सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
खंदौली-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 43, अंक : 3
जून – 2010

अमृत कण

यावत्स्थो ह्ययं देहो यावन्मृत्युश्च दूरतः।
तावदात्महितं कुर्यात् प्राणान्ते किं करिष्यति।।

(चाणक्य)

अर्थात् जब तक शरीर निरोग व स्वस्थ है और मृत्यु दूर है तब तक अपने आत्म कल्याण का उपाय कर लेना चाहिए। क्योंकि मृत्यु हो जाने पर कोई कुछ नहीं कर सकता।

◆ ◆ ◆

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्।।

(श्री मद्भगवद् गीता 6/6)

अर्थात् जिस जीवात्मा द्वारा मन और इन्द्रियों सहित शरीर जीता हुआ है, उस जीवात्मा का तो वह स्वयं ही मित्र है जिसके द्वारा मन तथा इन्द्रियों सहित शरीर नहीं जीता गया है, उसके लिए वह स्वयं ही शत्रु जैसा व्यवहार करता है।

◆ ◆ ◆

शतं वोऽम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः।
अधाशत क्रत्वो यूयमिमं मेऽअंगदंकृत।।

(यजुर्वेद)

मनुष्यों को चाहिए कि वे उचित पथ्य, आहार और नियमों का विधिवत्पालन कर शरीर को रोग रहित रखें अर्थात् स्वास्थ्य की रक्षा करें, क्योंकि स्वस्थ रहे बिना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष–इन चारों पुरुषार्थों को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

◆ ◆ ◆

नैकः सुखी न सर्वत्र विश्वन्तो न च शंकितः।
नोद्यमे विरमेत्क्वापि हेतावीर्ष्यांकले न तु।।

(भावप्रकाश 5/258)

अकेले सुख का भोग न करके, दूसरे को सुख भोग कराते हुए स्वयं सुख भोगना चाहिए। सबके ऊपर विश्वास या संदेह न करके सोच समझकर उचित व्यवहार करना चाहिए। उद्योग करना न छोड़ें और दूसरे की उन्नति और सम्पन्नता से ईर्ष्या न करें।

◆ ◆ ◆

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थः- शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष: 43 अंक : 3

कृत्स्नस्य योऽस्य जगतः सचराचरस्य,
कर्ता कृतस्य च तथा सुखदुःखदाता।
संसार हेतुरपि यः पुनरन्तकालस्तं,
शकरं शरणदं शरणं व्रजामि।।

जो इस सम्पूर्ण चराचर जगत् के कर्ता और इसे अपने किए हुए कर्मों के अनुसार सुख-दुःख देने वाले हैं, जो संसार की उत्पत्ति हेतु तथा उसका अन्तराल भी स्वयं ही है, सबको शरण देने वाले उन्हीं भगवान शंकर की मैं शरण लेता हूँ।

जून, 2010

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	12
3.	सम्पुट योग –प्रो. आचार्य चन्द्रहास शर्मा	15
4.	श्री प्रभु चरणों में समर्पित –राजेश कुमार सिंह	17
5.	दीर्घजीवी प्राणायाम् –डॉ. जे.पी. शर्मा	18
6.	गुंजन –डॉ. विजय सिंह	24
7.	दया करो गुरुदेव –जगदीश राए बत्तरा	27
8.	श्री गीतामृत पदावली –डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी	28
9.	संगति का प्रभाव –अंशुमान देव मालवीय	31
10.	मनुष्य जीवन का उद्देश्य –अनिल दुबे	34
11.	गीत –भूपेन्द्र 'अंकुश'	35
12.	नारी को योग की आवश्यकता –डॉ. श्रीमती सरिता भारद्वाज	36

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 140.00
द्विवार्षिक	: रु. 250.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

विशेष लेख

योगियों का कोर्स

योग–योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

जिस प्रकार से हिन्दी, अंग्रेजी और संस्कृत के बड़े–बड़े विद्यालयों के अन्दर छात्रों के अध्ययन के लिए पहले से ही उनका पाठ्यक्रम नियत रहता है उसी प्रकार योग में भी उच्चतम स्थिति प्राप्त करने के लिए उनका भी अभ्यास–क्रम विधिवत विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम की तरह से ही निश्चित रहता है। हमने इससे पहले यह भली प्रकार से समझा दिया है कि योगियों की वर्णाक्षरी मन की एकाग्रता से आरम्भ होती है और उसके बाद आगे क्या–क्या अभ्यसनीय विषय है, यह श्री गुरूदेव जी की कृपा से सामने आता रहता है। "सिद्धयोग" सिद्धों की एवं श्री गुरूदेव की अनुकम्पा से ही प्राप्त हुआ करता है। ईश्वर के परम अनुग्रह को प्राप्त हुआ करता है। ईश्वर के परम अनुग्रह को प्राप्त कर मनुष्य सिद्धयोग का विद्यार्थी बन पाता है और उसका अधिकारी बन जाने के बाद श्री गुरूदेव के परम अनुग्रह से इस मार्ग में उसकी प्रगति होती चली जाती है। जो लोग सिद्धयोग के विद्यार्थी बन जाते हैं और मन की एकाग्रता के साथ अन्तर–भूमिकाओं में उनका प्रवेश हो जाता है ऐसी स्थिति में योग का द्वार उनके लिए खुल जाता है। वे लोग उत्तरोत्तर उन्नति करते रहते हैं। भगवान व्यासदेव ने पातंजलियोग सूत्र के भाष्य में लिखा है:–

योगिनो योग एव उपाध्यायः।

अर्थात्– योग में प्रगति हो जाने के बाद योगी का वह योग ही गुरू बना रहता है और वह यह बतलाता रहता है:–

इयमन्तरा भूमिरियमन्तरा भूमिः।

उसके बाद यह स्थिति होगी, उसके बाद यह स्थिति होगी। ऐसे दृश्य साधकों के सामने अपने आप ही आते रहते हैं और उन दृश्यों के अनुसार यदि अपने गुरूदेव की परम कृपा पात्र है तो वह योगी साधक अन्तरायों से बचकर अपनी साधना को बढ़ाता चला जाता है और थोड़े समय में ही उसको "**अभ्युदय निःश्रेयस सिद्धि**" हो जाती है।

अतः योगियों का अभ्यास क्रम, मन की एकाग्रता से प्रारम्भ होता है। अपने मन में एकाग्रता के अभ्यास को उच्चतर बनाकर संयम तक ले जाने के लिए भगवान पतंजलिदेव ने अपने अष्टांग–योग के अन्दर तीन उच्चतम साधनों का वर्णन किया है जिनको सिद्ध कर लेने

के बाद ही योगी संयम के विषय को भली प्रकार से समझ सकता है और संयम सिद्ध हो जाने पर ही उसका भूमियों में विनियोग किया जा सकता है और वस्तु की यथार्थ स्थिति को जाना जा सकता है, किन्तु उससे पहले श्री पतंजलि जी के बतलाये हुए उन तीन प्रमुख साधनों को अभ्यास में ले आना परम आवश्यकीय है।

इन तीनों साधनों का नाम धारणा, ध्यान और समाधि है। ये अष्टांग–योग के अंतरंग साधन माने जाते हैं, क्योंकि यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार अष्टांग–योग के पाँच अंग, मन की आभ्यन्तर स्थिति हुए बिना भी अभ्यास में लाये जा सकते हैं, किन्तु धारणा, ध्यान और समाधि को तभी मनुष्य अपने अभ्यास में ला सकता है, जब वह अन्तःचक्षु हो चुका हो। वह बाह्य व्यापार को बन्द करके अन्तरावलोकन का अभ्यासी बन चुका हो। धारणा, ध्यान और समाधि ये तीनों अंग इस प्रकार से हैं–

धारणा

भगवान पतंजलिदेव ने धारणा का लक्षण इस प्रकार से लिखा है–

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।

अर्थात्–किसी लक्ष्य स्थान में अपने चित्त को इकट्ठा करना धारणा कहलाती है। इस सूत्र के भाष्य में भगवान व्यासदेव ने यह पंक्ति लिखी है:–

नाभिचक्रे, हृदयपुण्डरीके, मूर्ध्नि ज्योतिषि, नासिकाग्रे, जिह्वाऽग्रे इत्येवमादिषु, देशेषु, बाह्यो वाविषये, चित्तस्य वृत्तिमात्रेण बन्ध इति धारणा।

अर्थात्– नाभिचक्र, हृदय कमल, मूर्धाज्योति, नासिकाग्र, जिह्वाग्र आदि स्थानों में बाह्य वृत्ति से या आभ्यन्तर वृत्ति से केवल वृत्ति से ही चित्त को इकट्ठा करना धारणा कहलाती है। जो व्यक्ति मन की एकाग्रता के अन्य साधनों का भी अभ्यास करते हुए मन की एकाग्रता के लिए लक्षीभूत स्थल पर हृदय कमल या मूर्धाज्योति आदि के अन्दर मन को एकाग्र करके धारणा का अभ्यास करते हैं, उनका वह अभ्यास स्वाध्यायपूर्वक अनवरत चलता है तो लगातार छः मास के अभ्यास के बाद यह धारणा ही ध्यान के रूप में परिवर्तित हो जाती है। ध्यान चित्त की उस स्थिति का नाम है जिसमें चित्त की बाह्य वृत्ति का उपशमन हो जाने के बाद आभ्यन्तर वृत्ति का पूर्णरूपेण अभ्युदय हो जाता है। उसमें चित्त का बिल्कुल सदृश प्रवाह चलने लगता है। उसी को भगवान पतंजलि देव ने ध्यान कहा है।

ध्यान

ध्यान का लक्षण करते हुए भगवान पतंजलिदेव ने यह सूत्र लिखा है:–

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।

अर्थात्– ध्येयभूत लक्ष्य स्थल पर चित्त का तैलधारावत् सदृश प्रवाह ही ध्यान

कहलाता है। इस सूत्र पर भगवान व्यासदेव जी ने भाष्य करते हुए यह वार्तिक लिखी है:-

तस्मिन् देशे ध्येयालम्बनस्य प्रत्ययस्यैकतानता सदृशः प्रवाहः प्रत्ययान्तरेणापरामृष्टो ध्यानम्।

अर्थात्–उस लक्ष्य स्थान में ध्येयावलम्बन भूत विषय में चित्त का अनवरत सदृश प्रवाह जिसमें कोई दूसरा ज्ञान पैदा ही न हो, चित्त की इस प्रकार की स्थिति को ध्यान कहते हैं। इस प्रकार का ध्यान जब साधक का दो या तीन घण्टे अनवरत चलने लग जाये और इसमें प्रत्ययान्तर छू भी न सके, वृत्ति बिल्कुल एकाग्र रहे तो कुछ समय के बाद यही समाधि के रूप में परिवर्तित हो जाया करता है। मनुष्य के मन की वृत्ति तदाकारित होकर तद्रूप हो जाया करती है, उसी का नाम समाधि है।

समाधि

समाधि का लक्षण पतंजलिदेव जी ने निम्नांकित सूत्र में प्रकट किया है:-

तदेवार्थ मात्रनिर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधिः।

इस सूत्र पर व्यास जी ने निम्नांकित पंक्तियों में भाष्य लिखा है, वह इस प्रकार से है:-

ध्यानमेव ध्येयाकार निर्भासः प्रत्ययात्मकेन स्वरूपेण शून्यमिव यदा भवति ध्येय स्वभावावेशात्तदा समाधिरित्युच्यते।

अर्थात्–वह ध्यान ही ध्येयाकार वृत्ति में बदला हुआ प्रत्यान्तरेण अपरामृष्ट होकर जिसमें साधक अपने स्वरूप को ही भूल जाये और अपने आपको ध्येयाकार में अवस्थित समझने लगे अर्थात् उसको यह आभास न रहे कि मैं कोई यज्ञदत्त, देवदत्त, चन्द्रदत्त आदि व्यक्ति हूँ। प्रत्युत यह आभास हो कि जिसका मैं ध्यान करता हूँ वह राम, कृष्ण या शिव मैं ही हूँ और इस प्रकार स्थिति के अनवरत बढ़ जाने के बाद साधक के अन्दर अपने इष्टदेव की सिद्धियों का स्वतः प्रकाश होने लगे तो समझ लेना चाहिए कि अब यह समाधि ही हो गयी। समाधि का ही उत्कृष्ट रूप संयम कहलाता है। भगवान पतंजलिदेव ने संयम की परिभाषा इस प्रकार लिखी है:-

संयम

त्रयमेकत्र संयमः।

इस सूत्र पर व्यास जी का भाष्य इस प्रकार है–

एकविषयाणि त्रीणि साधनानि संयम इत्युच्यते तदस्य, त्रयस्य तांत्रिकी परिभाषा संयम इति।

अर्थात्– धारणा, ध्यान, समाधि तीनों साधन जब एक विषयक हो जायें, उनके बीच में कोई अन्तरायें न आयें, तभी संयम सिद्ध हुआ समझना चाहिये और संयम सिद्ध हो जाने के

बाद ज्यों–ज्यों अभ्यास के बल से संयम की उत्कृष्ट स्थिति होती चली जायेगी तब इस प्रकार के संयमित मन को हम जहाँ भी जगायेंगे वह उस विषय को तत्काल प्रत्यक्ष कर लेगा। ज्यों–ज्यों योगी संयम पर विजय प्राप्त करेगा, त्यों–त्यों उसको प्रज्ञालोक होता चला जायेगा। अर्थात्–समाधि प्रज्ञा बिल्कुल होती चली जायेगी। इस प्रकार संयम सिद्ध हो जाने के बाद ही योगी को संयम का उपयोग अन्यान्य भूमियों में करना चाहिये न कि उत्तरभूमियों में। जो साधक निम्न श्रेणियों के अन्दर बल पा जाता है उसकी उत्तर श्रेणियाँ अपने आप ही उत्कृष्ट हो जाया करती हैं। कदाचित् ईश्वर के परम अनुग्रह से या गुरुदेव की अनुकम्पा से योगी जितोत्तर भूमि हो जाता है। अर्थात्–संयम के ऊँचे विषयों में सफलता पा जाता है तो उसको निम्न श्रेणियों में संयम करने की आवश्यकता नहीं रहती। जिस प्रकार से एक छात्र बाकायदा स्कूल की शिक्षा न पाकर अपनी स्वतन्त्रता से अध्ययन करके बी0ए0, एम0ए0 आदि परीक्षाओं को उत्तीर्ण कर लेता है तो उसको पहली, दूसरी आदि छोटी श्रेणियों के अध्ययन की आवश्यकता नहीं रहती। इस प्रकार जितात्र भूमि योगी को अधः भूमियों में संयम की आवश्यकता नहीं रहती। वैसे इस अभ्यासक्रम से जो योगी अपने मन को संयमित कर लेता है वह ईश्वर के परमानुग्रह से उत्तरोत्तर भूमियों में भी विजय प्राप्त करता है। भगवान व्यासदेव जी ने एक श्लोक के रूप में दो पंक्ति इस प्रकार लिखी हैं–

योगेन योगो ज्ञातव्यो योगात्प्रवर्तते।
योऽप्रमत्तस्तु योगेन स योगे रमते चिरम्।।

अर्थात्–योगी का वह योग ही गुरू बन जाता है क्योंकि योग से ही योग चलता है, जो आलस्य रहित होकर योगाभ्यास करता है वह अवश्य समाधि को प्राप्त हो जाया करता है। जिस योगी ने अपने मन को संयमित कर लिया है उसको चाहिये कि जिस अभ्यास क्रम को हमारे पूर्व आचार्यों ने बतलाया है उन विषयों के अन्दर मन को संयमित करके अपने आपको परिपूर्णरूपेण ज्ञान–विज्ञान तृप्तात्मा बना ले तभी वह व्यक्ति युक्तयोगी कहलाने का अधिकारी बन सकेगा।

युक्त योगी का लक्षण

भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता के छठे अध्याय में युक्त योगी का लक्षण इस प्रकार लिखा है–

ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्म कांचनः।।

अर्थात्–जिसकी आत्मा ज्ञान–विज्ञान से परिपूर्ण है और विकार रहित स्थिति में पहुँच चुकी है, जिसने इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है और जिसकी दृष्टि में लोहा, पत्थर और सोना सभी कुछ एक जैसा ही है अर्थात्–किसी में उसकी आसक्ति नहीं होती, ऐसा योगी

युक्तयोगी कहलाता है। ज्ञान तृप्तात्मा का अर्थ है प्रकृति के सभी विषयों में संयम करके उनके यथार्थ तत्व को जानकर उस पर पूर्णाधिकार प्राप्त कर लेना। यही ज्ञान तृप्तात्मा का लक्षण है। इसके अतिरिक्त जिस योगी ने पूर्णरूपेण आत्म साक्षात्कार कर लिया है और विषयवासना के गर्त से पूर्णरूपेण ऊँचा उठ चुका है, इन्द्रियों पर पूर्णाधिकार कर लिया है वही योगी युक्तयोगी कहलाता है। युक्तयोगी बनने के लिए साधक को चाहिये कि वह शास्त्रोक्त विधि से विभिन्न विषयों में संयम करता हुआ युक्त–योगिता को प्राप्त करे। भगवान पतंजलिदेव ने सम्प्रज्ञात समाधि का लक्षण लिखते हुए इस सूत्र की रचना की है:–

वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात् सम्प्रज्ञातः।

अर्थात्– वितर्क, विचार आनन्द अस्मिता के भेद से ही सम्प्रज्ञात समाधि चार प्रकार की है।

वितर्कानुगत योग

सम्प्रज्ञात योग की पहली श्रेणी वितर्कानुगत समाधि कहलाती है। इसका अर्थ है– योगी जिस समय प्राथमिक अभ्यास शुरू करता है, उस समय वह चित्त को ठहराने के लिए स्थूल विषयों का अवलम्बन लेता है। इस अभ्यास में योगी के सामने प्रायः स्थूल विषय ही आया करते हैं। इसको इस प्रकार समझ लेना चाहिये जैसे किसी साधक ने अपने देव भगवान शिव का अथवा राम या कृष्ण का ध्यान आरम्भ किया, तो इस समाधि में उसके सामने इष्टदेव की मनुष्याकृति ही आती रहेगी और जिस समय मन इस ध्यान से विचलित होगा तो उस समय उसके सामने मनुष्य लोक के ही दृश्य अधिक आयेंगे। यह वितर्कानुगत योग सम्प्रज्ञात योग की पहली श्रेणी है। जिस समय योगी अन्तर्मुखी हो करके किसी विषय का चिन्तन करने लगता है तो उस समय उसको उत्तरोत्तर प्रगति कराने के लिए सर्वशक्तिमान परमात्मा की शक्ति उसकी सहायक हुआ करती है। जिस समय वह अपनी पहली श्रेणी को अच्छी प्रकार से परिपक्व बना चुकता है उस समय उसके सामने द्वितीय श्रेणी के दृश्य उर–प्रेरक गुरूदेव की प्रेरणा से स्वयं ही आने लगते हैं और परिणामस्वरूप उसका यह पूर्वाभ्यास स्वतः ही छूट जाता है क्योंकि उसके अभ्यास का विषय उससे भी सूक्ष्म विचारानुगत योग का हो गया है।

विचारानुगत योग

विचारानुगत योग में मनुष्य अपने इष्टदेव के स्वरूप को मनुष्य लोक की अपेक्षा बहुत अधिक सुन्दर एवं आभामान देखने लगता है। वह यह समझता है मेरे ध्यान ध्येयावलम्ब मेरे इष्टदेव अब उत्तरोत्तर बहुत ही दिव्य छवि वाले परम रमणीक एवं सुन्दर बनते जा रहे हैं। इस द्वितीय श्रेणी के अन्दर योगी अपने इष्टदेव को देवाकृति में देखने लगता है। जब उसका यह अभ्यास परिपक्व हो जाता है उस समय उसके सामने स्वतः ही देवलोक

के दृश्य आने लगते हैं। वह योगी अपने इष्टदेव को बहुत ही सुन्दर दिव्याकृति में देखता है। ऐसी स्थिति में इसके सामने देवलोक के दृश्य आने लगते हैं। कभी वह देखता है, उसके सामने देवोद्यान, नन्दनवन आदि के दृश्य आ रहे हैं। कभी–कभी देवलोक के और रमणीक दृश्य या देवलोक की सुन्दरियाँ नृत्य करती हुई सामने आती हैं। तरह–तरह की वाणियाँ सुनाई देती हैं अब तक यह साधक योगी **"मनुष्यः देवानाम् पशुः"** के अनुसार देवताओं के अधीन रहने वाला सेवक के समान साधारण प्राणी था, किन्तु गुरूदेव की परम अनुकम्पा एवं ईश्वरानुग्रह को पाकर अब यह योगी बन गया और बड़े दिव्यात्माओं का पूज्य हो गया। यह स्थिति इस प्रकार की है, जिसमें कोई भाग्यवान गुरुदेव का लाड़ला, वीर, धीर, संयमी पुरुष ही आगे निकल पाता है, अन्यथा दैविक प्रलोभनों में आ करके अपने आपको पुनः अनिष्टों में डाल देता है। इस स्थिति में गये साधकों के लिए भगवान पतंजलिदेव का आदेश है कि –

स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मया करणं पुनरनिष्ट प्रसङ्गात्।

अर्थात्–जिस समय योगी के सामने देवलोक के दृश्य आयें और देवता उसका प्रेमपूर्वक आह्वान करें उस समय योगी को बिल्कुल सतर्क हो जाना चाहिए। क्योंकि देवलोक के रमणीक दृश्यों में फँस करके उसका दुबारा अनिष्ट न हो जाये। इसलिए भगवान पतंजलिदेव ने यह आदेश दिया कि जिस समय योगी को देवता लोग दिव्य भोग दिखलाकर उसको आकर्षित करने की चेष्टा करें उस समय योगी को चाहिए कि वह देवलोक के प्रलोभनों को न देखे और देखने पर भी यदि उसने अपने आपको नियंत्रण में कर लिया है तो उस हालत में योगी के मन में यदि यह अभिमान पैदा हो जाता है कि अब मैं देवताओं का भी पूज्य हो गया हूँ इसलिए मेरी इन पर हुकूमत है और मुझे इनकी बात माननी चाहिये। ऐसा अभिमान करने से योगी को कालभय रहता है और देवताओं की बात मान करके वह वासनीय भोगों में प्रवृत्त हो जाता है तो प्रवृत्ति बढ़ जाने से फिर उसी खंदक में पड़ जाता है जहाँ से वह बड़ी कठिनता के साथ पार हुआ था। महापुरुषों के चरणों में इस प्रकार की कई घटनायें घटती रहा करती हैं। इसके उदाहरण स्वरूप एक यथार्थ घटना लिख देना चाहता हूँ जिसको पढ़कर हर व्यक्ति सचेत हो जाये और वह इनके प्रलोभन से बच करके अपना अभ्युदय करता रहे।

राधेश्याम नागा

(उपनाम रमणिगिरि नागा)

हमारे आश्रम योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा सवांई में अकस्मात् घूमता–घामता एक नवयुवक नागा साधू आया और उसने आश्रम की नियमावलि को स्वीकार करके योगाभ्यास आरम्भ किया। श्री प्रभुजी के परम अनुग्रह को पाकर उसने बहुत जल्दी अपना

अभ्युत्थान किया और थोड़े ही समय के अन्दर योग की द्वितीय श्रेणी विचारानुगत में वह प्रवेश कर गया। उसके ध्यान में भगवान शिव के लीला स्थल एवं अन्य सत्पुरूषों की अनुभूतियाँ हुआ करती थीं। शनैः–शनैः अभ्यास से यह स्थिति आती गयी कि उसने देवलोक के सुन्दर दृश्य देखने आरम्भ कर दिये। वह कभी देवेन्द्र लोक में जाकर उनके रमणीक उद्यान और लीला–स्थलों को देखता, कभी देवांगनाओं की नृत्य कलाओं को देखता और कभी रसायनों का अनुभव किया करता था। शनैः–शनैः वहाँ की नृत्य कलाओं को देखने का वह अभ्यासी हो गया। उसका स्वर्गीय उपभोगों में आकर्षण बढ़ गया और देव सुन्दरियाँ उसका मान करने लगीं। उसने एक बहुत सुन्दर कन्या को देखा जिसको देखकर उसका मन उसकी ओर आकर्षित हो गया। ऐसी स्थिति होने पर देवताओं ने उसको परामर्श दिया कि यह देवकन्या तुम्हारे लिए बहुत दिनों से तप कर रही है। यह सोचती है कि कब तुम मनुष्य लोक को छोड़कर इस दिव्य लोक में आकर रहोगे सो अभी तक इस प्रकार का कोई सयोग नहीं हो पाया। अब परम गुरूदेव की अनुकम्पा को पाकर तुम्हारा परम पुण्य बढ़ गया है और इस लोक में आ गये हो इससे अच्छा तुम्हारे लिए और कोई स्थान नहीं है। गुरूदेव के चरणारविन्द में जाकर तुमने प्राप्त करने योग्य वस्तु को पा लिया है। इसलिए अब इधर–उधर भटकने की आवश्यकता नहीं। तुम्हारे गुरूदेव तुम्हें यहाँ आने से रोकते होंगे, इसलिए तुम आज ही आश्रम छोड़कर कुसुम सरोवर पर जा करके तप करो। उसके फलस्वरूप तुम इसी दिव्यलोक में आ जाओगे या यह देवकन्या ही वहाँ प्रकट होकर वहीं पुष्प–मालायें पहनायेंगी। परिणामस्वरूप वह उत्तम साधक उन प्रलोभनों में आकर आश्रम से चला गया। देवलोक का अतिथि तो वह नहीं बन पाया किन्तु अन्यान्य सम्पर्कों से उसका पतन अवश्य हो गया और अपनी उच्चतम स्थिति से पुनः साधारण मनुष्य लोक का साधारण मनुष्य ही रह गया। इसलिए भगवान पतंजलिदेव ने आदेश दिया है:–

स्थान्युपनिमंत्रणे संगस्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसंगात्।।

यह सम्प्रज्ञात योग की दूसरी श्रेणी है जिसमें योगी के सामने देवलोक के दिव्य दृश्य सामने रहा करते हैं और प्रबल प्रलोभन उसके सामने आया करते हैं। किन्तु श्री गुरुदेव का परम कृपा पात्र इन सब विघ्न–बाधाओं से बचकर अपने उच्चतम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कदम बढ़ाता चला जाता है और शनैः–शनैः अपने परम लक्ष्य को अवश्य पा लेता है। इससे आगे योग की तृतीय श्रेणी है–आनन्दानुगत योग।

आनन्दानुगत योग

इस समाधि में बुद्धि से परम पवित्र धर्म प्रकट होते हैं। सत्व शुद्धि होकर मनुष्य विवेक ख्याति की ओर बढ़ता है। उसके रोग शोक नष्ट हो जाते हैं, पवित्र प्रेम, ज्ञान, धर्म और दया का पूर्ण उदय हो जाता है। योगी अपने आपको सर्वथा आनन्द रूप में देखने लगता है। अब उसका लक्ष्य अखण्ड भू–मण्डलाकार व्यापक तेज रह जाता है। जिस इष्टदेव का अभी

तक चिन्तन किया था, उसको अणु परमाणुओं में ओत-प्रोत देखने लगता है। यह परम सुख है इसको पा करके योगी और कुछ भी पाने की इच्छा नहीं रखता। जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में इस प्रकार वर्णन किया है–

सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धि ग्राह्य मतीन्द्रियम्।
वेति यत्र न चैवायं स्थितश्चलतितत्वतः।।
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरूणापि विचाल्यते।।

अर्थात्–ये आत्यन्तिक सुख है और केवल मात्र बुद्धिग्राही है, अतीन्द्रिय है। इस स्थिति में जाकर मनुष्य पतन से परे हो जाता है और वह विचलित नहीं होता। यह ऐसा सुख है जिसको पाकर के योगी और कुछ पाना नहीं चाहता और बड़े भारी दुःख से भी विचलित नहीं होता। हमेशा आनन्दमग्न रहा करता है। यहाँ अपने आप ही युक्तता होने लगती है और इस समाधि में समाधिस्थ होकर योगी प्राणी मात्र के अन्दर अपने आपको और प्राणीमात्र को अपने अन्दर देखने लगता है। जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण ने अपने मुखारविन्द से स्वयं कहा है–

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानिं चात्मनि।
ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।
यो मां पश्यति सर्वत्र सर्व चमयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि सच मे न प्रणश्यति।।

अर्थात्–जो प्राणी मात्र में अपने आपको देखता है और अपने अन्दर प्राणीमात्र को देखता है वह युक्तात्मा है। वह कभी भी मुझसे दूर नहीं होगा। दूसरे शब्दों में जो मुझको सर्वत्र देखता है और सबको मेरे अन्दर देखता है उसके लिए मैं कभी नष्ट नहीं होता। इस बुद्धिग्राही सुख को पाकर के योगी अपने आप को कृतार्थ बना लेता है। इससे आगे की चौथी श्रेणी वह है जिसमें वृत्ति निर्वाणोन्मुखी हो जाती है। उस समाधि का नाम अस्मितानुगत योग है।

अस्मितानुगत योग

अस्मितानुगत समाधि वह कहलाती है जिसमें योगी ब्रह्माण्ड भर के समस्त दृश्यों को देखकर शान्त हो जाता है। वृत्ति केवलमात्र एक शेष रह जाती है जिसको निर्वाणोन्मुखी वृत्ति कहा करते हैं। इस स्थिति के योगी की स्थिति भजन करती है, अस्मि, अस्मि, अस्मि अहमेवास्मि अर्थात्–मैं हूँ, मैं हूँ, मैं हूँ यह सब कुछ मैं हूँ। इस समाधि में योगी को दो विशेष प्रकार की ताकतें उपलब्ध होती हैं, पहली ताकत उसकी बुद्धि ऋतम्भरा बन जाती है। भगवान पतंजलिदेव कहते है–

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा।

तस्मिन् समाहित चित्तस्य या प्रज्ञा जायते तस्या ऋतम्भरेति संज्ञा भवति, अन्वर्था

च सा सत्यमेव विभर्ति, न तत्र विपर्यासगन्धोऽस्तीति।

अर्थात्–इस समाधि में जो योगी को बुद्धि पैदा होती है वह अन्वर्था अर्थात् सत्य को धारण करने वाली ही होती है। योगी जो कुछ सोचता है वह सत्य सोचता है। जो हरकत होती है वह सत्य होती है। उसके मन में जो भी संकल्प आयेगा वह वही होगा जो हो रहा होगा। यदि योगी यह विचार करता है कि उस देश में इस समय वर्षा हो रही है तो वह हो ही रही है। तभी उसके मन में यह संकल्प बनेगा। अन्यथा नहीं बनेगा। यह ऋतम्भरा प्रज्ञा और सभी प्रकार के संस्कारों को रोक देती है, केवल अपने ही संस्कार इसमें शेष रहते हैं, शेष संस्कार निर्वाणोन्मुखी वृत्ति के ही होते हैं। इस स्थिति में जा करके योगी सत्य संकल्प हो जाता है। वह जो कुछ सोचता है वह होने लगता है। यह भी एक प्रकार की सिद्धि है। इसको संकल्प सिद्धि कहते हैं। दूसरी सिद्धि चित्तनिर्माण शक्ति योगी को स्वभाव से ही प्राप्त हो जाती है। भगवान पतंजलिदेव कहते हैं–

निर्माण चित्तान्यस्मितामात्राद्।

अस्मिता मात्रं चित्तकारणमुपादाय निर्माण चित्तानि करोति ततः सचित्तानि भवन्ति।

अर्थात्– इस समाधि में अपना चित्त निर्माण करके योगी हजारों जगह एक साथ जा सकता है। वह जितने चित्त बनायेगा वे सभी उसके अधीन होंगे।

ये सम्प्रज्ञात योग की चार श्रेणियाँ हैं, जिनको पतंजलिदेव ने स्वीकार किया है। इस प्रकार से यह योगियों का कोर्स है और सम्प्रज्ञात योगियों के लिए अभ्यासक्रम का उत्तमोत्तम साधन है। जिस क्रम से चलता हुआ योगी अवश्य ही असम्प्रज्ञात योग को प्राप्त हो जाता है। इसी साधन क्रम को हमारे अन्यान्य आचार्यों ने भिन्न–भिन्न प्रकार से कहकर सर्वसाधारण के लिए सुलभ बना दिया है।

▣▣▣

ब्रह्मविष्णुमहेशादिदेवर्षिपितृकिन्नराः ।
सिद्धचारणयक्षाश्च ह्यन्येऽपि मुनयोजनाः।।

ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि देवता, ऋषि, पितृ, किन्नर, सिद्ध, चारण, यक्ष और अन्य मुनि लोग भी गुरु की सेवा करते हैं।

मृत्यु के बाद भी जीवन है।

आचार्य ब्रह्मचारी श्री दासलाल

मनुष्य शरीर लेकर जन्मता है अव्यक्त से व्यक्त होता है। इसीलिए इसे व्यक्ति कहा जाता है। मृत्यु के पश्चात् फिर अव्यक्त में चला जाता है और पुनः कर्म संस्कार वश शरीर में आकर कर्म भोग के लिए भ्रमण करता है। यही पुनर्जीवन है। मृत्यु से भौतिक शरीर का नाश होता है, किंतु सूक्ष्म शरीर एवं चेतना का नाश नहीं होता। मृत्यु बाद के जीवन के विषय में अलग-अलग धर्मों में भिन्न-भिन्न अवधारणायें हैं। मुस्लिम एवं ईसाई मत में पुनर्जन्म को नहीं मानते। वे शरीर को दफन करते हैं और उनकी मान्यता है कि Dooms day या कयामत के आने पर उसे स्वर्ग-नरक की प्राप्ति होती है। बौद्ध धर्म पुनर्जन्म को बहुत मानता है। हिन्दू मत के अनुसार जीव शरीर छोड़ने के बाद दूसरे शरीर को धारण कर लेता है जैसा कि भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र गीता में कहते हैं जीव शरीर छोड़ने के पश्चात् फिर नये शरीर को धारण कर लेता है जिस प्रकार से मनुष्य वस्त्र के जीर्ण हो जाने पर उसे त्याग देता है और नये वस्त्र धारण करता है। भौतिक दृष्टि रखने वाले लोग पुनर्जन्म में कम विश्वास करते हैं। उनका प्रश्न रहता है कि क्या मृत्यु के बाद भी कोई जीवन है Can the mind survive after death?

इस प्रश्न का उत्तर ढूढने में वे लोग लगे हुए हैं। डाक्टरों की खोज में NDES अर्थात् Experiences near death की विधा में डॉ. श्रीमती सतवन्त इस विषय पर तीस वर्षों से शोध कर रही हैं। इस अनुसन्धान में उन्होंने भारतीय व विदेशी साठ बच्चों की मृत्यु पूर्व या जन्म के कुछ साल बाद की अनुभूतियों का अध्ययन किया है। इन बच्चों ने पूर्व जन्म की फोबिया, व पिछले जन्म की जाति, धर्म एवं लिंग का वर्णन किया है। इनमें से कई ने दुर्घटना से अपनी मृत्यु का वर्णन करते हुए दुर्घटना में लगे चोट के निशान भी दिखाये हैं। कुछ बच्चे बाल्यकाल से ही ऐसी भाषा को बोलने में सक्षम थे जिस भाषा को उन्होंने इस जीवन में कभी सीखा ही नहीं था। कई सारे बच्चों को पूर्व जन्म का अर्जित ज्ञान स्पष्ट देखने में आया। हमारे देश में भी बहुत सारी घटनायें सुनने देखने को मिलती हैं। पूर्व जन्म का ज्ञान जिन लोगों को रहता है बाल्यावस्था में स्मृति स्पष्ट रहती है समय के साथ-साथ स्मृति धूमिल होती जाती है। फिर ज्यादा याद नहीं रहती। कानपुर के एक गाँव में दो मित्र रहते थे। उनमें से एक आध्यात्मिक प्रवृत्ति का था और दूसरा सामान्य सांसारिक वृत्ति का। आध्यात्मिक वृत्ति वाला

ध्यान योग का अभ्यासी था, वे दोनों खेतों में जाते और वहाँ समय गुजारते। आध्यात्मिक वृत्ति वाला ध्यान में बैठ जाता था और दूसरा मित्र गनने चूसता रहता था। उसे भी ईश्वर चिन्तन के लिए कहा जाता किंतु उसकी इस ओर रुचि नहीं थी। अचानक कुछ दिनों बाद आध्यात्मिक मित्र का देहपात हो गया और उसका अब किसी अच्छे घर में जन्म हो गया पिछले जन्म के ध्यान योग के फलस्वरूप उसे पूर्व जन्म की स्मृति बनी हुई थी। पढ़ लिख कर वह डाक्टर बन गया और 24–25 वर्ष का हो गया। एक बार वह तीर्थ यात्रा में हरिद्वार चला गया। वहाँ घूमते हुए गंगा किनारे उन्होंने एक वृद्ध भिखारी को देखा और उसे पहचान लिया। उसका नाम लेते हुए डाक्टर ने कहा 'तू यहाँ क्या कर रहा है? तू तो मेरा दोस्त है। इस युवा डाक्टर की बातें भिखारी को अजीब लग रही थी। कहने लगा– बाबू जी! मैं आपका दोस्त कैसे हूँ? डाक्टर ने अपने पूर्व जन्म की सारी बातें बताई। डाक्टर ने कहा– 'तुमने ईश्वर का चिन्तन नहीं किया। इसलिए कष्ट भोग रहे हो' डाक्टर ने उस मित्र को काफी रुपये देकर सन्तुष्ट कर दिया। यह डाक्टर कानपुर में 1980–81 में गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी के दर्शनार्थ आया और आध्यात्मिक चर्चा की और अपने अनुभव बताये तथा शुभाशीर्वाद प्राप्त किया। अस्तु! इस प्रकार की घटनाओं से पूर्व जन्म व पुनर्जन्म के सिद्धान्त पर विश्वास करना पड़ता है।

श्री मद्भगवद्गीता में भगवान् अर्जुन को बतलाते हैं कि अर्जुन! हमारे तुम्हारे पूर्व में बहुत जन्म हो चुके हैं मैं उन जन्मों के विषय में पूर्ण रूप से जानता हूँ क्योंकि मैं त्रिकालज्ञ हूँ। तुम अज्ञानी एवं अयोगी हो इसलिए तुम्हें पिछले जन्मों का ज्ञान नहीं है। गीता के छटे अध्याय में भी योग भ्रष्ट की गति के विषय में पूछने पर कहते हैं– पुण्य कर्म करने वाला, ध्यान योग का अभ्यासी कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता। साधना का अमृतमय फल उसको अवश्य मिलता है। योग भ्रष्ट होने पर भी ऐसे साधक ऊपर के स्वर्ग लोकों को प्राप्त कर अनन्त काल तक वहाँ वास करते हैं और पुण्य समाप्ति पर फिर पृथ्वी पर आते हैं। धनवान का पुण्यवान योगियों के यहाँ जन्म होता है और पूर्व संचित योग के संस्कारों के वशीभूत स्वाभाविक ही योग साधना में लग जाता है। इस प्रकार भगवद्वचन से भी पुनर्जन्म के सिद्धान्त की पुष्टि होती है। योग दर्शन में भगवान् पतंजलि देव जी महाराज ने भी इसी प्रकार की बात कही है। 'भव प्रत्ययोविदेह प्रकृतिलयानाम्' अर्थात् विदेह नामक देवता और प्रकृतिलीन योगियों का भवप्रत्यय संज्ञक योगी के रूप में पुनर्जन्म होता है। भव प्रत्यय वाले योगी तथा अनन्तकाल तक प्रकृतिलीन रह चुके योगी पुनः मर्त्युलोक में आते हैं और आगे की साधना को पूर्ण करने में लग जाते हैं ऐसे योगी जन्मजा चमत्कारिक होते हैं और एकाग्रचित्त वाले होते हैं। योग दर्शन में दो स्थल पर सूत्र आया है जिनसे भी पूर्वजन्म की प्रमाणिकता सिद्ध होती है, निम्न सूत्र पढ़िये–

अपरिग्रहस्थैर्य जन्म कथन्तासंबोधः॥ (2/39)

अर्थात् अपरिग्रह नामक यम की प्रतिष्ठा से पूर्व जन्म का बोध होता है। मैं पूर्व में कहाँ और किस योनि में था इन सब बातों का ज्ञान हो जाता है। विभूति पाद का एक और सूत्र भी

द्रष्टव्य है– **'संस्कार साक्षात्करणात पूर्वजाति ज्ञानम्'** अर्थात् पूर्वजन्मों के संस्कारों में संयम (समाधि) करने से पूर्वजन्म का ज्ञान होता है। योगी इस बात को भली–भाँति जान लेता है कि वह पूर्वजन्म में किस शरीर में और कहाँ पर था। इस प्रकार से अनागत संस्कारों का साक्षात्कार करने से भावी जन्म का भी ज्ञान हो जाता है। महर्षि पतञ्जलि आप्तपुरुष हैं उनका कथन मिथ्या नहीं हो सकता। आप्त वचन भी आगम प्रमाण के रूप में मान्य है। इस प्रकार से वर्तमान शोध एवं पुराणों के प्रमाण के आधार पर पुनर्जन्म का सिद्धान्त सिद्ध होता है। बीते जन्म की स्मृति के कारण ही मन को 'जातिस्मर' भी कहा जाता है।

योग दर्शन के विज्ञान के अनुसार योगी भूत, भविष्य का ज्ञान अपने एकाग्रता जन्य ज्ञान (समाधि) से प्राप्त कर सकता है। यह ज्ञान मिथ्या ज्ञान से बिल्कुल परे ऋतम्भरा बुद्धि अर्थात् विशुद्ध सत्य बुद्धि में प्रकट होता है। यही परम सत्य के साक्षात्कार का एक मात्र मार्ग है। योगी भूत, भविष्य वर्तमान के क्षणों पर संयम करके विवेकज्ञ ज्ञान को प्राप्त करता है जो सत्य ज्ञान व तत्व ज्ञान का आधार होता है। चरक संहिता में मुनिवर आत्रेय ने भारद्वाज के एक प्रश्न के उत्तर में मन की यह विशेषता बताई है कि जिस गुण से मरण अनुभव करने वाले प्राणी का मन अधिक युक्त रहता है अगले आने वाले दूसरे जन्म में भी उसी गुण से उसका संयोग रहता है। इस प्रकार महर्षि चरक भी पुनर्जन्म के सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं। जन्म मरण में मनुष्य के कार्यों व संस्कारों का भुगतान होता है तथा शोधन भी। चित्त की शुद्धि व कर्म बीज के क्षय के विनाश मुक्ति संभव नहीं है।

▣▣▣

अरोषणो यः समलोष्टाश्मकाञ्चनः
प्रहीणशोको गतसन्धिविग्रहः।
निन्दाप्रशंसोपरतः प्रियाप्रिये
त्यजन्नुदासीनवदेष भिक्षुकः॥

(विदुरनीति)

जो क्रोध न करने वाला, ढेला–पत्थर और सुवर्ण को एक–सा समझने वाला, शोकहीन, सन्धि–विग्रह से रहित, निन्दा–प्रशंसा से शून्य, प्रिय–अप्रिय का त्याग करने वाला तथा उदासीन है, वही भिक्षुक (सन्यासी) है।

सम्पुट - योग

प्रोफेसर आचार्य चन्दहास शर्मा, दिल्ली

कुछ प्राचीन योगाचार्यों ने सम्पुट मुद्रा और सम्पुट योग का सांकेतिक प्रयोग यत्र-तत्र किया है। यह योग सिद्धों को अतिप्रिय है। इसी के द्वारा वे सिद्ध स्थिति प्राप्त करते हैं। इसके द्वारा चेतना के बाह्य प्रवाह को आसानी से उलटकर अन्तर्मुखी बनाया जा सकता है। इन्द्रियों के माध्यम से विषयों की ओर आकृष्ट होकर चेतना बिखर कर भिन्न-भिन्न रूपों में वृत्ति बन जाती है। वही चेतना सुषुम्ना के जागरण (कुण्डलिनी जागरण) के द्वारा आत्म शक्ति के रूप में कार्यशीला होकर मल आवरण और विक्षेपों को दूर करती हुई साधक को आत्मरस का अमृतपान कराने लगती है। बाहर और अन्दर के बीच के अन्तराल में ही शक्ति का केन्द्र निहित है। शक्ति सम्पुटित रूप से गहराई में सीपी में मोती की तरह छिपी हुई है। समर्थ सद्गुरु शिष्य के अन्दर सोई हुई इसी आत्मशक्ति (कुण्डलिनी, प्रत्येक चेतना) का जागरण उपायों के द्वारा करवा कर मनोनाश, वासनाक्षय और संस्कारों का शीघ्र भुगतान कराके तत्वज्ञान में शिष्य को आरुढ़ किया करते हैं।

इस योग के अभ्यास में इड़ा, पिंगला और कुहूनाड़ी (मलमूत्र विसर्जन करने वाली) की गति अवरुद्ध हो जाती है और सुषुम्ना नाड़ी का द्वार खुल जाता है जिससे योगी का शरीर दिव्य चेतना से ओत-प्रोत हो जाता है। शरीरस्थ सभी नाड़ियों के कार्यों में शुभता आ जाती है। इस प्रकार इससे सभी नाड़ियों के अवरोध दूर होकर नाड़ी शुद्धि होने से प्राणों का प्रवाह सर्वत्र सूक्ष्म से सूक्ष्म कोषों में होने लगता है। जिससे दिव्य चेतना का ऊर्ध्वारोहण मूलाधार से सहस्त्रार पर्यन्त उत्तरोत्तर होता है। जिसके अभ्यास से योगी योग सिद्धि प्राप्त कर कृतकृत्य अनुभव करता है। इस प्रकार नाना प्रकार के सिद्ध प्राणायामों तथा बन्ध-मुद्राओं की क्रियायें शरीर में सहज रूप से होने लगती हैं और पूर्वार्जित कर्म संस्कार, पाप वासना तथा रोग समूह समूल नष्ट हो जाया करते हैं। इस योग के सम्बन्ध में उल्लेख है कि इस योग के अहर्निश अभ्यास से ब्रह्मज्ञान प्राप्ति का क्रम साधक के हाथ लग जाता है तथा

अनेनाभ्यासयोगेन वायुरभ्यसितो भवेत्।
वायावभ्यसिते वह्निः प्रत्यहं वर्धते तनौ।
वह्नौ विवर्धमाने तु सुखमन्नादि जीर्यते।।
अन्नस्य परिपाकेन रसवृद्धिः प्रजायते।
रसं वृद्धिगते नित्यं वर्धन्ते धातवस्तथा।।
धातूनां वर्धनेनैव प्रबोधो वर्धते तनौ।

दह्यन्ते सर्व पापानि जन्मकोट्यर्जितानि च।।

अर्थात् शरीर में प्राणवायु के प्रबल बने रहने से शरीरस्थ तेरह प्रकार की अग्नियाँ प्रबल रहती हैं जिससे शरीर में चतुर्विध भुक्त पदार्थों का परिपाक सम्यक् होने से होकर सप्त धातुएँ पुष्ट होती जाती हैं। चेतना का विस्तार बढ़ता जाता है जिससे अन्दर के चक्र, कमल और ग्रन्थियों का भेदन सहजरीति से होता जाता है। हमारा कर्माशय चित्त के द्वारा सुषुम्नामार्ग में विभिन्न चक्रों में जन्म जन्मान्तर से संस्कारों के रुप में संचित हैं। इस योग के अभ्यास से कुण्डलिनी की ज्ञानमयी, क्रियामयी, इच्छामयी शक्तियों के द्वारा नाना प्रकार के आसन, नाद, बन्ध, मुद्रायें, धारणायें तथा मंत्रजप स्वतः भगवती कुण्डलिनी की कृपा शक्ति द्वारा स्वतः होने लगते हैं। जिससे शुभाशुभ संस्कार ज्ञानाग्नि और योगाग्नि में जलकर आसक्ति रहित कर्तव्य कर्मों में रूपान्तरित हो जाते हैं अथवा पूर्णतः दग्धबीज भावापन्न होकर विच्छिन्न अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रक्रिया में प्राण और अपान का एकीकरण होने से मलमूत्र क्षय होने लगता है। वृद्धावस्था में भी युवावस्था जैसी स्फूर्ति, साहस, तेज, बल और क्रियाशक्ति बनी रहती है। नीचे से प्राणों की शक्ति के वेग से उदान प्राण ऊपर (कण्ठ, भृकुटि से आगे) पहुँचने से शरीर और चित्त सूक्ष्म में प्रवेश करने की सामर्थ्य सम्पादित करने में सक्षम होने लगते हैं। अपनी योग कक्षाओं में तथा यत्र-तत्र योग शिविर में कुछ युवा उत्साही साधकों को इसका अभ्यास कराकर हमने प्रयोग किया है वास्तव में इसके परिणाम आश्चर्यजनक होते हैं। किंतु जिनको इस मार्ग का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं है। वे उन साधकों की क्रियाओं को देखकर भयभीत या आश्चर्यचकित होकर अनर्गल टीका-टिप्पणी करने लगते हैं। कुछ स्थानों पर तो ऐसा हुआ कि बुजुर्ग लोगों ने दावे के साथ यह कहकर वहाँ से किनारा करना प्रारम्भ कर दिया कि हमने इतने वर्षों से योगाभ्यास किया है। ऐसा कभी होते नहीं देखा। यहाँ लगता है इन्होंने कुछ भूत सिद्ध कर लिये हैं। चलो, यहाँ से, किसी के पीछे छोड़ न दें। बचकर रहना। कैसा अभागा है यह जीव! अपनी अल्पज्ञता को ही समझदारी समझता है। इस योग में मूलबन्ध, उड्डियान बन्ध, जालन्धर बन्ध- तीनों बंध लगते हैं और प्राण-अपान, नाद-बिन्दु का मेल होने लगता है। प्राणों का खिंचाव ऊपर की ओर होता चला जाता है। मन पर पूर्ण नियंत्रण होने से एकाग्रता बनी रहती है। कहा भी है- सिद्धे बिन्दौ महायत्ने किं न सिध्यति भूतले। सिद्धयोग की परम्परा में योगी चरणदास ने इस योग के स्वानुभव को इन शब्दों में व्यक्त किया है-

बायें पाँव की एड़ी सेती, मूलद्वार रोकै करि हेती।
ऊरध की कूं खैंचन कीजै, शुकदेव कहै नीके सुन लीजै।
कपड़े की एक गेंद बनावै गुदामध्य कस बन्ध लगावै।
यों भी वायु सधै वा भांती, जो पै लगा रहे दिन राती।
पवन तत्व के ऊपर जावै प्राण अपान सहज मिल जावै।

नाद बिन्दु रल मिल जा दोई, एक बरस साधे जो कोई
योग मांहि यह भी परधान, बूढ़ी देह पलट हो जवान।
जठर अग्नि बाढै अधिकाय, जो चाहै तो बहुतै खवाय।
सुन चरणदास कहै शुकदेव, जो गुरुपूजा देवै भेव।।

संक्षेप में इस योग का सांगोपांग उल्लेख सम्भव भी नहीं है। यह प्रायोगिक विधि है। इसके लिए उत्तम साधक चाहिए जो ब्रह्मचर्य परायण, गुरुभक्ति समन्वित तथा गोदुग्ध, घी तथा सात्विक आहार का सेवन प्रचुर मात्रा में कर सकने की साधन क्षमता रखता हो। वह योग के सूक्ष्म रहस्यों को जानने वाले किसी आचार्य (जो स्वयं कर चुका हो) की देख रेख में करे। अन्यथा सिर में गर्मी बढ़ने से विक्षिप्त स्थिति में भी पहुँच सकता है। सद्गुरुकृपा से भगवती कुण्डलिनी यदि स्वयं इसे करायेगी तो कोई हानि नहीं होगी। अपने प्रयत्न से करने पर पूर्ण ज्ञान होना जरूरी है तभी लाभकर होगा।

▣ ▣ ▣

श्री प्रभु चरणों में समर्पित

श्री गंडा राम के प्यारे छैया, गोलोक के सरताज,
मेरी बिगड़ी बनाओ आज, मेरी बिगड़ी बनाओ।

1. आस–निराश में बीती जाए, पल–पल ये जिन्दगानी,
इधर का माल उधर उजाड़ा, मेरी यही कहानी,
मान की फिकर करूं तो कैसे, आँखों में नहीं लाज,
मेरी बिगड़ी बनाओ....

2. पूँजी सभी गंवाई हमने, करी न कुछ कमाई,
मन की गति भी रोक न पाया, ओकर धाम सवाई,
जैसा हूँ वैसा ही बनाया, अपना यहाँ समाज,
मेरी बिगड़ी बनाओ....

3. इन पैरों से चलकर आया, [illegible] को प्रभु पास,
आदर्शों में आग लगाकर, मुफ्त में ली उपहास,
मैं मूरख, मतिमंद, अभागा, करता ऐसा काज,
मेरी बिगड़ी बनाओ....

4. तुझे कसम तेरी भक्तों की, भगवन मुझे सम्भालो,
है राजेश नैया डूबने वाली, प्रभुजी आप बचालो,
आप ही दिल की धड़कन हो, आप ही हो आवाज,
मेरी बिगड़ी बनाओ....

राजेश कुमार सिंह, बलिया

दीर्घजीवी प्राणायाम्

डा. जे.पी. शर्मा, पावंटा साहिब, हिमाचल प्रदेश

यह सार्वभौम सत्य है कि प्राणायाम, प्राणी को स्वस्थ, सुन्दर तथा दीर्घ जीवी बनाते हैं। प्राणायाम करने से मनुष्य ऊर्जावान तथा ओजस्वी बनता है। मुख का आभामण्डल चमकने लगता है। शरीर के सारे अंग प्रत्यंग सुचारु रूप से अपना-अपना कार्य करने लगते हैं। मन मस्तिष्क ताजगी महसूस करता है। शरीर के सारे कार्य मन से ही संचालित होते हैं। अतः सुन्दर मन से सुन्दर ही विचार बनते हैं। सुन्दर विचारों से मनुष्य अच्छे-अच्छे कार्य करता है। प्राणी में सात्विकता आने लगती है। सात्विकता से प्राणी सद्गति की ओर बढ़ता है।

प्राणायाम दो शब्दों से मिलकर बना है। प्राण+आयाम। प्राण हमारी आत्मा का भोजन है अर्थात् जैसे मोटर के इंजन में पैट्रोल या डीजल डालने की आवश्यकता होती है, ठीक उसी प्रकार आत्मा को क्रियाशील रखने के लिए 'प्राणों' की आवश्यकता होती है। जब तक प्राणी का हृदय क्रियाशील रहता है तब तक प्राणी जीवित बना रहता है। हृदय की क्रियाशीलता के बन्द होते ही प्राणी की मृत्यु हो जाती है। हृदय की क्रियाशीलता बनाये रखने के लिए प्राण की आवश्यकता होती है जिसे प्राणी, हवा द्वारा श्वासों के रूप में लिया करता है। प्राण वास्तव में प्राणवायु को कहा गया है। प्राणवायु हवा में पायी जाती है। प्राणों का ठहराव या औसतन कम श्वास लेना ही प्राणायाम कहलाता है। दूसरे रूप में प्राणों को आराम देना ही प्राणायाम का उद्देश्य है। स्वस्थ मनुष्य औसतन एक मिनट में पन्द्रह बार श्वास लेता है। अगर वह प्राणायाम के समय एक मिनट में केवल बारह बार श्वांस ले, तब एक मिनट में तीन श्वासों की बचत होगी। एक घंटे में 180 श्वासें बचेंगी तथा चौबीस घंटों में 4320 श्वासों की बचत होगी। उस परम पिता परमेश्वर ने प्राणी की आयु निश्चित नहीं की है। अगर निश्चित की है तो वह है उसकी श्वासों की संख्या। उन निश्चित श्वासों को जल्दी-जल्दी लेने से निश्चित ही आयु कम रह जायेगी। अतः प्राणायाम के अन्तर्गत कम श्वासें ली जाती है, जिससे आयु बढ़ जाती है। यथा-

तस्मिन सति श्वास प्रश्वास योर्गति विच्छेदः प्राणायामः।

अर्थात् आसन सिद्धि होने पर श्वास प्रश्वास की गति को रोकना (कम करना) ही प्राणायाम है।

प्राणायाम श्वासों पर आधारित होता है। प्राणायाम के अंतर्गत प्राणी अपनी शरीरस्थ अपान वायु को बाहर वायुमण्डल में फेंकता है तथा उसके बदले में वायुमण्डलीय हवा को नाक द्वारा खींचकर प्राणवायु अर्थात् ऑक्सीजन ग्रहण करता है। हवा में लगभग 70 से 78 प्रतिशत

नत्रजन, 18 से 21 प्रतिशत ऑक्सीजन 0.3 से 0.97 प्रतिशत कार्बन डाइ ऑक्साइड व अन्य गैसें होती हैं। प्राणवायु, हृदय गति के लिए अत्यावश्यक होती है, इसी कारण प्रत्येक प्राणी श्वसन क्रिया करता रहता है।

प्राणायाम के अन्तर्गत निम्न तीन क्रियायें संपादित होती हैं–

1. पूरक प्राणायाम (INHALATION) :– जब वायुमण्डलीय हवा को नासा छिद्रों द्वारा अन्दर खींचा जाता है उसे पूरक प्राणायाम कहते हैं।

2. कुम्भक प्राणायाम (HALTATION) :– पूरक प्राणायाम के द्वारा हवा खींचकर कुछ समय के लिए रोकी जाती है, उसे कुम्भक प्राणायाम कहा जाता है। कुम्भक का समय कम से कम पूरक के समय का दोगुना होना चाहिए। कुम्भक का उद्देश्य होता है कि जितने ज्यादा समय तक हवा अन्दर रुकी रहेगी, उससे ज्यादा से ज्यादा प्राणवायु फेंफड़ों द्वारा अवशोषित होकर हृदय को भेजी जा सकेगी। यही प्राणायाम करने का मूल मंत्र है। जितने अधिक प्राण शरीर में रहेंगे उतने ही शरीर के अंग सुडोल, स्वस्थ तथा क्रियाशील बनेंगे। स्वस्थ मनुष्य अधिक से अधिक आयु का जीवन जीता है।

3. रेचन प्राणायाम (EXHALATION) :– कुम्भक के बाद शरीर के अन्दर की हवा को नासा छिद्रों द्वारा बाहर निकालने की क्रिया को रेचन प्राणायाम कहा जाता है। रेचन करते समय बड़ी सावधानी से हवा बाहर निकालनी चाहिए। तुरन्त एक दम हवा बाहर निकालना किसी भी प्रकार से ठीक नहीं है। सहज रूप से धीरे–धीरे नासा द्वारों से हवा बाहर निकालनी उचित होती है। नाक से चार अंगुल दूरी पर रूई का टुकड़ा रखा जाय तो वह हवा बाहर निकालते समय हिले तक नहीं, तभी प्राणायाम का मूल उद्देश्य सफल होगा। रेचन क्रिया में कुम्भक की अपेक्षा दोगुना समय लगना चाहिए। विशेष ध्यान रखें कि रेचन के अन्तिम चरण में नाभिकेन्द्र को अन्दर की तरफ दबायें ताकि पेट के अन्दर की सारी अपान वायु बाहर निकल जाये।

अतः प्राणायाम करते समय पूरक, कुम्भक तथा रेचन क्रिया में क्रमशः 1:2:4 के हिसाब से समय रखा जाये। पूरक करने में अगर एक सैकेण्ड लगे तो कुम्भक में दो तथा रेचन में चार सैकेन्ड के अनुपात में समय रखा जाये।

मनुष्य जाति में नारी को प्रधानता दी जाती है, उसी तरह प्राणायाम आरम्भ सदैव बाँये नथुने से करना उपयुक्त होता है। प्राणायाम से शक्ति पैदा होती है तथा शक्ति, नारी का ही प्रतीक है। नारी को वामांङ्गी इसीलिए कहा गया है। यही कारण है कि प्राणायाम बाँयी तरफ वाले नासाद्वार से आरम्भ किया जाये।

अतः उपर्युक्त विधि से प्राणायाम करेंगे तो प्रभु कृपा से मनोवांछित परिणाम प्राप्त करने में सफल हो सकेंगे। वैसे तो सभी प्रकार के प्राणायाम आयु को बढ़ाते हैं, परंतु फिर भी

हमारे पूर्वजों ने ऋषि–मुनियों ने कुछ विशेष प्रकार के प्राणायाम करने की सलाह दी है। जिन्हें लगातार करते रहने से मनुष्य दीर्घ काल तक जीवन जी सकता है। इन्हीं प्राणायामों के फलस्वरूप हमारे पूर्वज हजारों, लाखों वर्ष जीवन जीते रहे हैं। भीष्म पितामह को इच्छा मृत्यु का वरदान क्या था? प्राणायाम के बल पर अजर–अमरता प्राप्त की जा सकती है। प्राणायाम साधक के लिए ब्रह्मचर्य वृत्त का पालन करना अत्यावश्यक होता है। सद्गृहस्थ भी सुआचरण के द्वारा जीर्घजीवी तथा अजर–अमरता प्राप्त कर सकता है। अधिकांशतः हमारे पूर्वज सदगृहस्थ रहे हैं। सप्तऋषी मण्डल के सातों ऋषि गृहस्थ रहते हुए लाखों वर्षों तक इस धरा परे रहे जो आज भी आकाश मण्डल को सुशोभित कर रहे हैं।

यहाँ बताना आवश्यक है कि पृथ्वी पर जैसे पवित्र गंगा नदी, यमुना नदी तथा सरस्वती नदियाँ बहती हैं तथा तीनों का सनागम प्रयाग क्षेत्र में होता है जिसे दुनिया संगम कहती है। प्रयागराज में संगम होने के कारण उसे तीर्थराज त्रिवेणी कहा जाता है, जहाँ हर बारह वर्षों बाद कुम्भ का मेला लगता है। कहा गया है कि कुम्भ के अवसर पर प्रयागतीर्थ में नहाने से मनुष्य के जन्मजन्मान्तर के पाप धुल जाते हैं। ठीक उसी प्रकार गंगा, यमुना तथा सरस्वती हमारे शरीर में पाई जाती है तथा तीनों मिलकर 'संगम' बनाती है। शरीर के दाहिने नासाद्वार में गंगा नाड़ी, बांये नासाद्वार में यमुना नाड़ी तथा रीढ़ की हड्डी के मध्य में सरस्वती नाड़ी पाई जाती है। तीनों नाड़ियाँ दोनों भौंवों के मध्य, जहाँ तिलक लगते हैं, मिल जाती हैं। इस स्थान को आज्ञा चक्र के नाम से जाना जाता है। यहाँ तीनों नाड़ियों का संगम होता है, जो तीर्थराज त्रिवेणी कहा जाता है। मानव प्राणायाम के द्वारा जब इस तीर्थराज में स्नान करता है, तब वह अपने को परम पिता परमात्मा के बिल्कुल नजदीक पाता है।

अब सर्वजन लोक हिताय कुछ विशेष प्रकार के प्राणायामों की चर्चा करेंगे जिनके लगातार करने से मनुष्य दीर्घ जीवन जी सकता है। हमारे पूर्वज इन्हीं के बलबूते पर हजारों लाखों वर्षों तक जीवन जीते थे। जहाँ प्राणायाम करने को बैठें वह स्थान, साफ़, हवादार होना ठीक होता है। एकान्त नदी का किनारा या बगीचा प्राणायाम के लिए उपयुक्त होते हैं। कैसा भी शोरगुल नहीं होना चाहिए। आसन ऊँचा हो, नरम हो। कुश का आसन अथवा कम्बल की तह पर बैठना भी उपयुक्त होता है। वैसे तो सुखासन सर्वोत्तम रहता है। परंतु अपनी रूचि के अनुसार सुलभ आसन में बैठ सकते हैं। ब्रह्मचारीजन पद्मासन में ही बैठकर प्राणायाम करें तो बहुत लाभदायी रहता है। सीधे बैठ जायें, रीढ़ की हड्डी बिल्कुल सीधी रहे, गर्दन सीधी रखें तथा आँखें बन्द रहें। शान्तचित्त होकर प्राणायाम शुरू करें।

1. **भस्त्रिका प्राणायाम (DEEP BREATHING)** :– मेरूदण्ड को सीधा रखकर बैठें। दोनों नासाद्वारों से जोर से श्वांस को पेट के अन्दर खींचें। कुछ समय श्वांस रोक कर कुम्भक करें। तत्पश्चात् धीरे–धीरे श्वांस को छोड़ते हुए रेचन करें। रेचन में ध्यान रखें कि अपान वायु पेट के अन्दर से बाहर निकल जाय। इसके नाभिमण्डल को बाहर श्वांस छोड़ते

समय अन्दर पीठ की तरह दबायें। इससे अपान वायु को बहिर्गमन सुचारु रूपेण हो जायेगा। भस्त्रिका प्राणायाम मन्द, मध्यम तथा तेज गति से किया जा सकता है। बीमार–कमजोर मनुष्य मन्द गति से करें। इस प्राणायाम के फलस्वरूप पेट की पाचन शक्ति बढ़ जाती है तथा जठराग्नि तीव्र हो जाती है। अपच तथा अम्लता का नाश हो जाता है। भस्त्रिका प्राणायाम ग्यारह बार से सत्ताईस बार किया जा सकता है। श्वांस भरते तथा प्रश्वांस करते समय मंत्रजाप करते रहें तो विशेष आध्यात्मिक लाभ अर्जित होगा। उच्चरक्त चाप वाले मन्दगति से प्राणायाम करें तथा गर्मियों में कम करें।

2. कपालभाति प्राणायाम (AURA PRANAYAM) :– कपालभाति प्राणायाम करने से आभामण्डल जाग्रत होकर चमक उठता है। कपाल, मस्तिष्क को कहा गया है तथा भाति का अर्थ तेज, ओज तथा प्रकाश से है। अर्थात् इस प्राणायाम से आभामण्डल चमक उठता है। अंग्रेजी में आभामण्डल को औरा कहा जाता है।

अपने मेरुदण्ड को सीधा रखते हुए साधक सुखासन में बैठ जाये। दोनों हाथों को ज्ञान मुद्रा बनाकर घुटनों पर रख लें। नाभिमण्डल को पीठ की तरफ दबाते हुए दोनों नासाद्वारों से अन्दर की अपान वायु का रेचन करें। तत्पश्चात् पूरक स्वयं ही हो जायेगा। पुनः उपरोक्त की भांति नाभि को दबाकर अपान वायु का रेचन करें। इसी क्रम को बार–बार दोहराते रहें। नाभिमण्डल पर अपना ध्यान केन्द्रित रखें तथा उसे दबाते रहने से पेट के अन्दर की अपान वायु स्वयंमेव ही नासाद्वारों बाहर निकल जायेगी। मुँह को कभी भी प्राणायाम करते समय खोलें नहीं। इस प्राणायाम से मूलाधार, स्वाधिष्ठान तथा मणिपूरक विशेष रूप से क्रियाशील होने लगते हैं। नाभिमण्डल बार–बार सिकुड़ता तथा फैलता है। इससे चक्रों पर दबाव बनता है और ये गति करने लगते हैं। जिसका प्रभाव कुण्डलिनी पर पड़ता है। कपालभाति प्राणायाम करने से मनुष्य मानसिक विकारों से छुटकारा पा लेता है। अपान वायु पेट के अन्दर से निकलने से कई तरह की बीमारियाँ दूर हो जाती हैं। हृदय की रक्त कोशिकाओं तथा धमनियों में रक्त जमा नहीं रह पाता तथा रक्त अपनी साधरण गति करने लगता है। इस प्राणायाम को मन्द, मध्यम तथा तेज गति में कर सकते हैं। उच्च रक्त चाप तथा हृदय रोग से पीड़ित रोगी मन्द गति से प्राणायाम शुरू करें। अभ्यास करते–करते कुछ दिनों के पश्चात् मध्यम गति से कर सकते हैं। इस प्राणायाम को पाँच मिनट से पन्द्रह मिनट तक एक बार में कर सकते हैं। गर्मी के मौसम में कम प्राणायाम करें। लगभग सभी विकार इस प्राणायाम से दूर हो जाते हैं। स्वस्थ मनुष्य सभी विकारों से सदैव दूर ही रहता है। नजला–जुकाम, पीनस से पीड़ित मनुष्य इसे निम्न प्रकार से करें तो विशेष फलदायी रहता है। वैसे सभी लोग करें तो सोने में सुगंध जैसा प्रभाव होता है।

(अ) दक्षिण कपालभाति:– स्वाभाविक रूप से कपालभाति प्राणायाम करते हुए

बाँये नासाद्वार को बन्द करके, जब रेचन दाँये नासाद्वार से करते है उसे दक्षिणकपाल भाँति प्राणायाम कहते हैं। यह बड़े ही महत्व का प्राणायाम है। मुझे इस प्राणायाम से काफी लाभ मिला है। कपाल की अनेकों परेशानियाँ दूर हो जाती हैं। विचार शुद्ध बनने लगते हैं। मन के रोग शान्त हो जाते हैं। मन की चंचलता रुकने लगती है। अतः कम से कम ग्यारह से इक्कीस बार इस प्राणायाम को सामान्य कपालभाति प्राणायाम के बाद अवश्य करें।

(ब) बाम कपालभाति:– उपरोक्त दक्षिण कपालभाति प्राणायाम की तरह, जब दांये नासाद्वार को बन्द करके बांये नासाद्वार से अपान वायु का रेचन करते है, उसे बाम कपालभाति प्राणायाम कहते हैं। इस प्राणायाम के लाभ दक्षिण कपाल भाँति जैसे ही हैं।

3. नाड़ी शोधन प्राणायाम:– नाड़ी शोधन प्राणायाम शरीर के अन्दर की नस–नाड़ियों की सफाई के लिए किया जाता है। कैसा भी मल, अवरोध अगर उनके अन्दर जमा हो, उसे बाहर कर दिया जाता है जिससे शरीरस्थ सारे अंग सामान्य रूप से अपना–अपना कार्य करते रहते हैं।

शान्तचित्त किसी भी आसन में बैठ जायें। बाँये हाथ को ज्ञानमुद्रा में बाँये घुटने पर रख लें। दाँये अंगूठे से दाँये नासाद्वार को बन्द करें। मध्यम गति से बाँये नासाद्वार से श्वास खींच कर पूरक करें। कुछ समय श्वांस रोक कर कुम्भक करें। फिर धीरे–धीरे श्वांस बाहर निकालते हुए दाँये नासाद्वार से रेचन करें। इसी तरह अल अनामिका उंगली से बाँये नासाद्वार को बन्द करें तथा दाँये नासाद्वार से हवा खींचते हुए पूरक करें तथा कुछ समय के लिए श्वांस रोक कर कुम्भक करें। अब अंगूठे से दाँये नासाद्वार को बन्द करके बाँये नासाद्वार से श्वांस को धीरे–धीरे बाहर निकालते हुए रेचन करें। इस प्रकार एक प्राणायाम पूरा होता है। इसी प्रकार प्राणायाम करते जायें। यह प्राणायाम मन्द, मध्यम और तेज गति में कर सकते है। यह बड़े महत्व का प्राणायाम है। पूर्ण लाभ पाने के लिए जोर से पूरक करें, दोगुने समय तक कुम्भक करें तथा चार गुने समय में धीरे–धीरे रेचन करें। प्रतिदिन एक समय में सात से सत्ताईस बार प्राणायाम कर सकते हैं। यह प्राणायाम खाली पेट सुबह, दोपहर तथा शाम को किया जा सकता है। ध्यान रहे प्राणायाम करते समय लगभग तीन घंटे पहिले कुछ खाया न हो। लगभग पन्द्रह दिनों के नियमित प्राणायाम परिणाम आने लगेंगे। आप पहले की अपेक्षा स्वस्थ, प्रसन्न तथा ओजस्वी अपने को पायेंगे। नियमित अभ्यास के फलस्वरूप साधक की आयु सात वर्ष से सत्ताई वर्ष और बढ़ जाती है, ऐसा अनुभवी साधकों ने बताया है। इस प्रकार मनुष्य शतायु जीवन जी सकता है।

4. अनुलोम–विलोम प्राणायाम:– नाड़ी शोधन प्राणायाम करने के बाद अनुलोम विलोम प्राणायाम अवश्य करें। इससे चन्द्र नाड़ी तथा सूर्य नाड़ी सुचारु रूपेण क्रियाशील रहती है। रक्त चाप नियन्त्रित बना रहता है तथा सुषुम्ना नाड़ी जाग्रत रहती है जो ज्ञान का

अथाह भडार होती है। जैसे रेलगाड़ी केवल अपनी पटरी पर ही चल पाती है, ठीक उसी प्रकार कुण्डलिनी शक्ति, केवल सुषुम्ना पथ पर चलती हुई चक्रों का भेदन करती है। अनुलोम–विलोम ठीक उसी प्रकार किया जाता है जैसे नाड़ी शोधन करते हैं। केवल अन्तर यह है कि कुम्भक क्रिया इसमें नहीं की जाती। इसे भी सात से सत्ताईस बार रोजाना करें।

5. केवली प्राणायाम:– यह प्राणायाम भी काफी महत्व का है। इसे करने से मनुष्य में स्तम्भन शक्ति का विकास होता है। हमारे पूर्वज अपने प्राणों का स्तम्भन हजारों वर्षों तक कर लिया करते थे। वे जहाँ भी चाहते प्राणों को रोक लेते थे। इससे मनुष्य मात्र में इच्छा शक्ति जाग्रत होती है। इसे केवली प्राणायाम इसलिए कहा गया है कि इस प्राणायाम में केवल श्वासों का स्तम्भन किया जाता है। इसे करते समय बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है। बीमार, रोगी, रक्तचाप से पीड़ित तथा हृदय रोगी इसे कदापि न करें। एक बार में तीन से पाँच बार ही करें। साधारण रूप से श्वांस–प्रश्वांस करते हुए यकायक श्वासों का कुम्भक करें तथा कुछ समय बाद धीरे–धीरे श्वांस बाहर निकाल दें। यह एक प्राणायाम हुआ।

6. वज्रासन:– प्राणायाम करते–करते आदमी थकान सी महसूस करने लगता है। इसलिए तुरन्त बाद में प्राणायाम के उपरान्त वज्रासन अवश्य करना चाहिए। ऐसा करने से थकान आदि दूर हो जाती है। वह तरोताजा महसूस करने लगता है। इस आसन में बैठने के लिए दोनों पैरों को मोड़कर ऐड़ियाँ बाहर निकालते हुए तथा दोनों पैरों के अंगूठे आपस में मिले रहें। दोनों ऐड़ियों के खाली भाग में नितम्ब रखकर बैठ जायें तथा मेरूदण्ड, गर्दन सीधी रखें। दोनों हाथों को ज्ञान मुद्रा में जांघ पर घुटनों पर रखें। यह आसन ध्यान करने के लिए भी अच्छा माना गया है। मन की एकाग्रता बढ़ाता है। बदहजमी, अपच, गैस विकार दूर करता है। अच्छी बात यह है कि इसे भोजन के तुरन्त बाद में भी कर सकते हैं। ऐसा करने से भोजन सहज पचता है। जैसा इसका नाम है वैसे ही यह आसन करने से शरीर वज्र की तरह शक्तिशाली बनाता है।

प्रिय पाठकों उपरोक्त प्राणायाम करते समय पूरक तथा रेचन के अन्तर्गत मंत्र जाप करने से प्राणायाम, सोने में सुहागे की तरह फलदायी होता है। इच्छुक महानुभाव इससे लाभान्वित हों। ऐसी मेरे सद्गुरु भगवान की लालसा है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद दुःख भाग भवेत्।।

गुंजन

डा. विजय सिंह

आध्यात्मिक पद्यमय काव्य, संतों के सम्प्रज्ञात समाधि से निर्झर के रूप में प्रवहमान होकर सामान्य जन को जिनका जीवन संतप्त है, दारुण दाह से जल भुन रहे हैं, उन्हें शीतलता प्रदान करता है। अहोभाव कि ऐसी ही मनो दशा में मीरा जी ने गाया होगा–

मोहे लागि लगन गुरु चरनन की,
भवसागर सूख गयो है,
फिकर नहीं मोहे तरनन की।
चरन बिना मोहे कछु नहीं भावे,
जग–माया सब सपनन की।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर
आस लगी गुरु चरनन की।

जिसके हृदय में सद्गुरु चरण–नख का प्रकाश अखण्ड रूप में हर समय विराजता हो वही भगवसागर तरने की फिकर (चिन्ता) नहीं करेगा क्योंकि सम्पूर्ण जग–माया उस अखण्ड तेज में तिरोहित हो स्वप्नवत है।

मानस में, प्रारम्भ में ही महात्मा तुलसीदास जी ने भी इसी 'नास्ति तत्वं गुरोः परम' के बोध को गुंजायमान किया है–

बन्दऊ गुरुपद पदुम परागा
सुरुचि सुवास सरस अनुरागा....
श्री गुरु पद नख मणिगण ज्योती
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।।
दलन मोह तम सो सु प्रकासु,
बड़े भाग्य उर आवहिं जासु।।
उघरहि विमल विलोचन हिय के,
मिटहि दोष दु:ख भव रजनी के।।
सुझहिं राम चरित मणि मानिक,
गुप्त पकट् जो जेहि खानिक।।

कितना साम्य है उपरोक्त कृतार्थ हुए नारी देह में प्रेमाकुल मीराबाई एवं बौद्धिक भाव–विह्वल पुरुष देहधारी मानसकार के भाव में।

दिव्य आनन्दानुभूति अनिर्वचनीय होती है। उसी मस्ती में, अहोभाव में परानुभूति, वैखरी में गुंजायमान हो उठता है। केवल भाव ही नहीं अपितु तत्व बोध भी इन्हीं योग दशाओं में योगी को होता है। शोक, भयग्रस्त जीवों को इसलिए संत दर्शन सद्गुरु सानिध्य, भगवद्–भजन, प्रभु चर्चा से शांति एवं प्रेरणा मिलता है। वास्तविक विपत्ति तो प्रभु का विस्मरण है। कह हनुमंत विपद प्रभु सोई, जब तब सुमिरन भजन न होई।

हम योजना बनाते हैं, सुनहरे स्वप्न संजोते हैं इसके लिए परिश्रम करते हैं पता नहीं कब काल कवलित कर ले।

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं।
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कज श्रीः।।
इत्येव चिन्तयति कोषगते द्विरेफे।
हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार।।

हम सभी की दशा इस भौंरे जैसी है। एक भौंरा सांझ होते ही सूर्य के प्रकाश न रहने पर कमल–कलिका के सौरभ पान में भूला उसकी कोमल पंखुड़ियों में कैद हो गया। भौंरा आशान्वित है कि रात्रि बीतेगी, सुप्रभात होगा, सूर्य देव प्रखर होंगे, कमल खिलेगा और मैं तब मुक्त होकर स्वच्छन्द उड़ूंगा और पुनः पुष्पों के रस का आस्वादन करूंगा। परंतु हाय, हाय यह क्या हुआ? जब वह कमल में बन्द पड़ा ऐसा सोच ही रहा था, एक हाथी पानी पीने आया और पानी पी चुकने के बाद उसने नलनी को ही उखाड़ उदरस्थ कर लिया। खेल समाप्त हुआ।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने इसी आसा–पास में बद्ध जीव को जागने का उपदेश देते हुए कहते हैं–

जागु, जागु जीव जड़ ! जो है जग–जामिनी।
देह–गेह–नेह जानि जैसे घन–दामिनी।।1।।
सोवत सपनेहूँ सहै संसृति–संताप रे।
बूड़यो मृग–बारि खायो जेवरी को साँप रे।।2।।
कहै बेद–बुध, तू तो बूझि मनमाहिं रे।
दोष–दुख सपने के जागे ही पै जारि रे।।3।।
तुलसी जोगते जाय ताप तिहूँ ताय रे।
राम–नाम सुचि रुचि सहज सुभाय रे।।4।।

भावार्थ– अरे मूर्ख जीव! जाग, अब तो जाग। संसार रूपी रात्रि को देख! अपने देह–गेह स्वजन–परिजन में जो तेरा लगाव है वह क्षणभंगुर है वैसे ही जैसे बादल में बिजली की क्षणभर चमक। जागृत में ही नहीं स्वप्न में भी संसार के ही कष्ट भोग रहा है। ओह! तू भ्रम से मृगतृष्णा के जल में डूब रहा है और तुझे रस्सी का सर्प डस रहा है। वेद और सम्बोध प्राप्त आत्मज्ञानी सद्गुरु पुकार–पुकार कर कह रहे हैं, तू अपने मन में विचार कर और समझले कि स्वप्न के सारे दुःख और दोष वास्तव में जागने पर ही नष्ट होते हैं। स्वयं को चेताते हुए मानस कार ने कहा– हे तुलसी! संसार के तीनों ताप (भौतिक, अधिभौतिक एवं आध्यात्मिक) अविद्या रूपी निंदा से जागने पर ही नष्ट होते हैं और तभी नाम–जप में अहैतुकी, स्वाभाविक विशुद्ध प्रीति उत्पन्न होती है।

साधन की सफलता इसी आसा–पास बद्धता से मुक्त करता है। घटाकास का गहन अंधकार छटता है चिदाकास की अखण्ड ज्योति व्याप्ति ही जागना है। जिसका चिदाकास में अवस्थान हो गया उसे जगत–जाल का खेल समझ में आ गया। वह फिर इस जाल–पाश में नहीं उलझता। उसे उस परमसत्ता एवं अपनी आत्मसत्ता की एकता का बोध अहर्निस बना रहता है। अब भ्रम–भूत उसे पकड़ नहीं सकता। उस साधक की निष्ठा को कोई भी घटना कम्पायमान नहीं कर सकता। आत्मविश्वास का बोध उसे उठते–बैठते, सोते–जागते अपने घेरे में सुरक्षित किये रहता है। इसी मनः अवस्था में गोस्वामी जी ने गाया–

अबलौं नसानी, अब न नसैहौं।
राम–कृपा भव–निसा सिरानी, जागे फिर न डसैहौं।।1।।
पायो नाम चारू चिंतामनि, उर कर तें न खसैहौं।
स्याम रूप सुचि रूचिर कसौटी, चित्त कंचनहिं कसैहौं।।2।।
परबस जानि हँस्यों इन इंद्रिन, निज बस है न हँसैहौं।
मन मधुकर पनकै तुलसी रघुपति–पद–कमल बसैहौं।।

साधक–सिद्ध, सुजान अर्थात् जो आत्मप्रतिष्ठित हो गया। उसके उद्गार हैं। उनका उद्बोधन है। अब तक की आयु व्यर्थ गयी (साधना रहित) परंतु जो बची है उसे अब नष्ट नहीं होने दूँगा। सद्गुरु कृपा अथवा ईष्ट कृपा से भव रात्रि (घटाकास का अन्धकार रूप रात्रि) बीत गयी अब जागने पर (चिदाकास के भास्वर आलोक दर्शन होना ही जागरण है) फिर सोने का उद्यम नहीं करूंगा। अर्थात् पुनः माया के आवरण रूपी अंधकार में नहीं भटकूंगा। मुझे मंत्र रूपी चिंतामणि मिल गयी है उसे हृदय रूपी हाथ से कभी नहीं गिरने दूंगा (बोध रूपी जागरण में शिव संकल्प का उदय होना) अथवा हृदय में चरणारविन्द और कर में मंत्र अवगाहन करता रहूंगा। ईष्ट के पवित्र स्वरूप रूपी कसौटी पर अपने चित्तरूपी सोने को परखता रहूंगा। तात्पर्य मेरा मन ईष्ट ध्यान में सदा–सर्वदा लगता है कि नहीं। स्मरण करता हुआ साधक रूप संत

तुलसीदास जी कहते हैं, जब तक मैं इन्द्रियों के वशीभूत था चित्त चंचल, माया ग्रसित था तथा विषयानुभूति में मुझे इधर–उधर नचाता और हँसी उड़ाता रहा। अब वह बात नहीं है, उर में अन्त: प्रकाश हो चुका है अब मैं स्वतंत्र हूँ यानी मन–इन्द्रियों के निग्रह होने पर अब हँसी का पात्र नहीं बनूंगा। अब प्रण पूर्वक (सर्वसंकल्प से) मन रूपी भौंरे को ईष्ट के चरण कमलों में लगा दूंगा। अर्थात् मन को ईष्टाकार भाव में भावित कर समाधि जनित आनन्द को प्राप्त करूंगा।

▣▣▣

दया करो गुरुदेव, मुझ पर दया करो।

जगदीश राए बंसल 'अधम', नई दिल्ली

दया करो गुरुदेव, मुझ पर दया करो।
हीरा जन्म अनमोल, इसको सफल करो।।

ऐसे मेरे धर्म नहीं थे,
साधक जैसे कर्म नहीं थे,
कैसे पहुँचा मैं दरबार?
मुझ पर दया करो.....
योग के तुम पतंजली जी हो,
गीता के तुम कृष्ण जी हो,
हे सिद्धों के सरदार,
मुझ पर दया करो.....
सूर्य और चन्द्रमा तुम हो,
सामवेद और शंकर तुम हो,
हे वेद व्यास अवतार,
मुझ पर दया करो....
नारद शारद कुबेर तुम्हीं हो,
गंगा यमुना सुमेर तुम्हीं हो,
हे देवन के देव,
मुझ पर दया करो.....
ज्ञानी के ज्ञान तुम्ही हो,
ध्यानी के ध्यान तुम्ही हो,
हे अखण्ड मण्डला कार,
मुझ पर दया करो.....
हरियाली की वृष्टि तुम हो,
जन जीवन की सृष्टि तुम हो,
हे 'अधम' के पालन हार,
मुझ पर दया करो.....

▣▣▣

श्री गीतामृत - पदावली

प्रेषक - डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, गोरखपुर

(गतांक से आगे)

नाश-रहित तुम उसको जानो, जो है सब में व्याप्त यहाँ।
इस अविनाशी का कोई भी, कर सकता है नाश कहाँ?।।17।।

नाशवान यह मानव-तन है, जिसमें रहता जीव अमर।
वह है नित्य अपरिमित अर्जुन!, अतः उठो, अब करो समर।।18।।

जो कहते, यह मर जाता है, अथवा वध है यह करता।
नहीं जानते वे दोनों ही, यह न मारता या मरता।।19।।

होकर पुनः न होता, मरता और न जन्म ग्रहण करता।
अमर, अजन्मा जीव सनातन, तन के साथ नहीं मरता।।20।।

जाना जिसने 'अमर जीव है, नहीं कभी उसको मरना'।
कैसे सम्भव है तब उसका, हनन कराना या करना।।21।।

वस्त्र पुराना तजकर जैसे, नया वस्त्र धारण करते।
उसी भाँति तज देह पुरानी, नई देह प्राणी धरते।।22।।

शस्त्र नहीं हैं इसे काटते, नहीं जलाता पावक भी।
पानी नहीं भिगोता इसको नहीं सुखाता वायु कभी।।23।।

कटता, जलता नहीं, भीगता, और सूखता नहीं कभी।
जीव नित्य है अचल सनातन, अविचल है औ' व्यापक भी।।24।।

मन इन्द्रिय से परे जीव है, इसमें नहीं विकार कभी।
ये सब बातें पार्थ! जानकर, अनुचित तेरा शोक सभी।।25।।

जन्म-मरण इसका ही होता, यही धारणा यदि मन में।
तो भी उचित नहीं है अर्जुन! शोक तुम्हारा यह रण में।।26।।

जन्म यहाँ पाकर है मरना मर कर निश्चित जन्म अभी
इसमें जब अधिकार नहीं है व्यर्थ तुम्हारा शोक सभी।।27।।

जीव अव्यक्त जन्म से पहले जन्म ग्रहण पर होते व्यक्त।
मर जाने पर फिर अव्यक्त वे शोक तुम्हारा है सब व्यर्थ ।।28।।

कोई देखें अद्‌भुत कहकर, कोई अद्‌भुत लेते मान।
अचरज से सुनते हैं कोई, सुनकर इसे न सकते जान।।29।।

सबके तन में रहने वाले, अमर जीव का मरण नहीं।
अतः किसी के लिए तुझे है, उचित न करना शोक कहीं।।30।।

यदि तू अपना धर्म विचारे, तो भी चिंता की क्या बात?
क्षत्रिय को तो धर्म-युद्ध से, बढ़कर श्रेय नहीं कुछ तात।।31।।

खुला द्वार ज्यों सुरपुर का हो, स्वयं युद्ध यह है आया।
पाता इसे वही क्षत्रिय है , बड़ा भाग्य जिसने पाया।।32।।

नहीं करेगा धर्म–युद्ध, तब, होगा तेरे यश का नाश।
पाप कमाएगा औ' होगा, धर्म–कीर्ति का पूर्ण विनाश।।33।।

यही नहीं, तेरे अपयश का लोग करेंगे अक्षय गान।
अपयश तो सम्मानित नर को– मरने से भी बढ़ कर जान।।34।।

रण से भाग गया है अर्जुन–यही कहेंगे महारथी।
तुच्छ सभी समझेंगे तुझ को, बड़ी प्रशंसा जिसकी थी।।35।।

तुझे लक्ष्य कर बैरी तेरे, कहा करेंगे अनुचित बात।
तेरे बल की निन्दा होगी, इससे बढ़कर दुःख क्या तात।।36।।

मर जाने पर स्वर्ग मिलेगा, जय होने से भूतल राज।
उठो–उठो तब हे कुन्ती सुत ! करो युद्ध का अब सब साज।।37।।

सुख–दुःख लाभ–हानि सब सम है, जीत हार भी एक समान।
यही समझकर युद्ध करो तुम, पाप न होगा वीर महान।।38।।

(शेष अगले अंक में)

संगति का प्रभाव

अंशुमान देव मालवीय, वाराणसी

संगति मनुष्य के जीवन में काफी प्रभाव डालती है। अगर मनुष्य अच्छी संगति में रहे तो उसका आचरण काफी शुद्ध होता है और बुरी संगति में रहने से उसका आचरण काफी अशुद्ध नजर आता है। मनुष्य ही नहीं बल्कि पशु–पक्षी के भी जीवन में संगति का काफी प्रभाव पड़ता है।

एक ऐसी ही घटना मैं आपके सामने प्रस्तुत करना चाहूँगा जिससे हमें काफी कुछ सीखने व समझने को मिलता है। घटना कुछ इस प्रकार से है कि एक बहेलिया ने जंगल से दो तोते पकड़े और अपने घर की ओर रवाना हो गया। दोनों ही देखने में काफी खूबसूरत तथा देखने में एक जैसे थे और संयोगवश दोनों भाई भी थे। दोनों में यह विशेषता थी कि थोड़ा बहुत मनुष्य की आवाज में भी बोलते थे।

आगे की कहानी कुछ इस प्रकार है कि रास्ते में एक महात्मा उस बहेलिया से मिले और पूछा वत्स! क्या तुम यह तोता मुझे बेचोगे! बहेलिया बोला हाँ! महात्माजी इस तोते को आपको अवश्य बेचूँगा और बहेलिया ने दो तोते में से एक तोता महात्मा जी को बेच दिया। थोड़ा आगे बढ़ने पर एक दुष्ट प्रवृत्ति का मनुष्य उस बहेलिया से मिला और पूछा क्या यह तोता तुम मुझे बेचोगे। बहेलिया ने जवाब दिया अवश्य मैं इस तोते को बेचूँगा आपको और फिर बहेलिया ने दूसरा तोता पिंजड़े से निकाल कर उसको दे दिया और दोनों ही बहेलिया एवं व्यक्ति अपने–अपने घरों को रवाना हो गये।

कुछ महिनों पश्चात् महात्माजी के पास रहने वाला तोता खूब अच्छे–अच्छे वचन, वाक्य तथा मन्त्र सीख गया और कोई भी मनुष्य महात्माजी की कुटी की ओर आते देखता तो कहता स्वागतम् आपका स्वागत है। कृपया इस कुटी में पधारें।

दूसरा तोता जो दुष्ट प्रवृत्ति के व्यक्ति के पास रहता था वह अपशब्द बात सीख गया और जो भी आता उसे अपशब्द बात कहता।

एक बार उस राज्य के राजा जिस राज्य में यह दोनों तोते रहते थे शिकार पर निकले। शिकार करते–करते उस तोते के घरके पास पहुँचे जो कि अपशब्द कहता था राजा को आता देखकर दुष्ट प्रवृत्ति वाले व्यक्ति के पास रहने वाला तोता बोला भाग जा नहीं तो मारूँगा एक झापड़। राजा बोलता है अपने सैनिकों से पता लगाओ कि यह अपशब्द वाक्य कौन बोल रहा है। जब सैनिकों ने पता लगाया तो पता चला कि यह वाक्य एक तोता बोल रहा है। तब राजा ने उस तोते के मालिक को बुलाकर उस तोते को अपने मनोरंजन (हास्य) के

लिए खरीद लिया।

फिर थोड़ा कुछ आगे बढ़ने पर महात्माजी के कुटिया के पास जब राजा पहुँचा तो महात्माजी के पास रहने वाला तोता बोला स्वागतम् आइये आपका इस कुटिया में स्वागत है। राजा ने अपने सैनिकों को आज्ञा दी की पता लगाओ की यह मधुर वाक्य कौन बोल रहा है। जब सैनिकों ने पता लगाया तो पता चला कि पास ही की कुटिया के महात्माजी के तोते ने यह मधुर वाक्य बोला है। तब राजा बहुत प्रसन्न हुआ और महात्माजी के पास जाकर बोला महात्मा जी इस तोते को आप मुझे देंगे तो आपका मैं आजीवन आभारी रहूँगा। तब महात्मा जी बोले अवश्य मैं आपको यह तोता दूँगा और फिर महात्माजी ने तोता राजा को दे दिया। राजा दोनों ही तोतों को लेकर अपने राज्य लौट गया।

दोनों ही तोते थे तो एक समान परंतु व्यवहार के कारण उन दोनों की परख अलग–अलग की जाती थी। एक बार राजा ने अपने पड़ोसी राज्य के राजा को अपने राज्य में आमन्त्रित किया। राजा ने पड़ोसी राज्य के राजा के आने से पहले अपने मनोरंजन (हास्य) के लिए अपशब्द बोलने वाले तोते को द्वार पर रख दिया और अच्छे तोते को जो शुभ मधुर वचन बोलता था, उसे मेहमान वाले कक्ष में रख दिया। जब पड़ोसी राज्य का राजा द्वार के अन्दर ज्यों ही प्रवेश करने जा रहा था तभी अशब्द बोलने वाले तोते ने बोला भाग जा नहीं तो मारूंगा एक झापड़! तब पड़ोसी राजा बहुत ज्यादा क्रोधित हो गया और जब वह मेहमान कक्ष में गया तो मधुर वाक्य बोलने वाले तोते ने बोला आइये आपका स्वागत है आइये, पधारिये स्वागतम्। तब पड़ोसी राज्य के राजा ने राजा से क्रोध में पूछा पहला वाक्य किसने और क्यों कहा। तब राजा ने हँस कर कहा राजन् यह दोनों ही वाक्य तोते ने कहे हैं और मैंने अपने हास्य के लिए ऐसी योजना बनायी थी। पड़ोसी राजा और भी क्रोधित हो गया। बात यहाँ तक पहुँच गयी कि युद्ध तक की सम्भावना आ गयी। पड़ोसी राज्य के राजा ने और राजा ने अन्त में यह विचार विमर्श किया की लड़ाई तब समाप्त होगी जब अशब्द बोलने वाले तोते को मार दिया जाय। ज्यों राजा ने ग्यान से तलवार निकाली वैसे ही मधुर वाक्य बोलने वाले तोते ने कहा रुकिये इसको मत मारिये। वास्तव में हम दोनों भाई हैं परंतु संयोगवश हम दोनों अलग–अलग प्रवृत्ति के मनुष्य के घर पहुँच जाने की वजह से हम दोनों का व्यवहार अलग–अलग हो गया। मैं एक महात्मा जी के पास पहुँच गया जिससे अच्छे–अच्छे मंत्र श्लोक तथा मधुर वचन बोलना सीख गया और यह अशब्द बोलने वाला तोता दुष्ट प्रवृत्ति के मनुष्य के पास पहुँच गया और अशब्द वाक्य सीख गया और किसी भी मनुष्य को अशब्द बोल देता है। तब राजा ने उस तोते को छोड़ दिया।

हम सभी को इस कथा से यह शिक्षा लेना चाहिए की मनुष्य को सदा सत्य पुरुषों की संगति में रहना चाहिए। क्योंकि सत्यपुरुषों की संगति से मनुष्य को हमेशा ज्ञान की प्राप्ति होती है। और अज्ञान एवं अभिमान दूर भाग जाता है। सत्य पुरुषों की संगति ही दुनिया की सबसे

बड़ी दौलत है और दुष्ट पुरुषों की संगति में रहने से आन तथा अहंकार मनुष्य के अन्दर जन्म लेता है। हमेशा मनुष्य को सत्यपुरुषों की संगति में ही रहना चाहिए क्योंकि यही मनुष्य के लिए कल्याणकारी है।

आप सभी सुयोग्य पाठकों से मेरा यह नम्र निवेदन है कि लेख की त्रुटियों को न ध्यान देते हुए इसके पवित्र भावों को ग्रहण करें। और सद्गुरु देव भगवान को ही एकमात्र सहायक मानकर इन्हीं की आरती पूजन एवं कृपा चरित्र का वर्णन सदैव करते रहें।

जय गुरु देव!

श्री योग साधन आश्रम ऋषिकेश का

वार्षिक महोत्सव

'श्री योग साधन आश्रम' रेलवे रोड ऋषिकेश का वार्षिकोत्सव ज्येष्ठ शुक्ला अष्टमी, नवमी, दशमी तद्नुसार शनिवार, रविवार तथा सोमवार दिनांक 19, 20 एवं 21 जून 2010 को बड़ी धूमधाम से मनाया जायेगा। उत्सव में उच्चकोटि के विद्वानों द्वारा योग सिद्धान्तों पर उत्तमोत्तम प्रवचन, रुचिकर संगीत, योग साधनों का प्रदर्शन एवं श्री हरिनाम संकीर्तन आदि बहुत ही रोचक कार्यक्रम रहेंगे। अतः आप भी अपने इष्ट–मित्रों, बाल–गोपालों सहित उत्सव में भाग लेकर सत्संग से लाभ प्राप्त करें। अपने साथ के सभी गुरु भाईयों को इसकी सूचना अवश्य दें।

निवेदक

आचार्य पूर्णचन्द शर्मा

मनुष्य जीवन का उद्देश्य

अनिल दुबे, दतिया

वर्तमान भौतिक वादी युग में मनुष्य ने भले ही आर्थिक एवं भौतिक सुख सुविधायें प्राप्त कर ली हो परंतु मनुष्य जीवन का जो उद्देश्य है, बहुत कम विरले लोग हैं जिनका ध्यान इस ओर है। मनुष्य अंतिम लक्ष्य सुख समझता है सुख का आनन्द तो विनाशी है सुख को परम लक्ष्य मान लेना भूल है। परमात्मा ने मनुष्य का जीवन धर्मोपार्जन के लिए दिया है जिसमें सभी प्रकार से कल्याण है।

इस सृष्टि में अनेक नर–नारी आये और चले गये लेकिन इतिहास के पृष्ठों पर कुछ ही नर–नारी दिखाई देते हैं तो क्या संसार में इतने ही नर–नारी आये। आये हजारों पर जिनके जीवन में धर्म की महत्ता थी वह अमर हैं। जिन्होंने सुख एवं भौतिकता में जीवन बिताये, कष्टों से डरे, धर्म से विमुख होकर लोभ लालच में फँसे वे इतिहास के पृष्ठों से उठ गये। परंतु जिन्होंने सुख की अपेक्षा दुःख आराम की अपेक्षा कष्टों को त्यागा वे अमर होकर दूसरों के लिए अनुकरणीय पात्र बनें।

परमात्मा ने अपनी इच्छा से इस भौतिक सृष्टि की रचना की है और इसके जीवों को अनेक योनियों में विभाजित किया है जो जीव जैसा कर्म करता है वह उस कर्म को काटने के लिए वैसा ही शरीर धारण करता है। जब तक आत्मा कर्म और उसके प्रतिफल के नियम से बंधी है तब तक उसे जन्म लेना पड़ता है और मृत्यु का सामना करना पड़ता है मनुष्य शरीर इस भौतिक रचना की सर्वश्रेष्ठ कला कृति है, क्योंकि मनुष्य ही एक प्राणी है जो कर्म कर सकता है अन्य योनियाँ भोग योनियाँ हैं। हम अपने आपको जानकर परमात्मा को जान सकते हैं। मनुष्य शरीर मिलने का यही लाभ है।

इस रहस्य को न समझने वाले मनुष्य केवल भोग विलास के जीवन में अटके रहते हैं और जीवन का अमूल्य समय नष्ट करते हैं। ऐसे व्यक्तियों के लिए परमात्मा भी यही सोचता है कि जब इसे भोग विलास ही पसंद है तब भोग योनि में ही जाओ।

अर्थात् मनुष्य उचित मार्ग पर चल कर देव भी बन सकता है एवं दानव भी बस सोचना हमारे हाथ में है कि प्रकाश कि ओर बढ़े या अन्धकार में भटके।

शास्त्रों में वर्णन आता है कि मृत्यु अटल सत्य है। जिसने मृत्यु को समझ लिया वह परमात्मा के करीब पहुँच गया और ऐसा व्यक्ति परमात्मा के तत्व को जान सकता है। वैसे तो हर व्यक्ति यह समझता है कि एक न एक दिन हमें मरना है परंतु बोध नहीं रहता है जिस दिन बोध हो जाता है स्वाभाविक ही वह सांसारिक भोग वासनाओं से दूर होता चला जाता है और परमात्मा से मिलने की उत्सुकता बढ़ती चली जाती है, ज्यों ही उसकी व्याकुलता बढ़ती जाती

है वह परमात्मा के समीप पहुँचता जाता है। सच्ची व्याकुलता होने से परमात्मा भी उसके समीप आने लगते हैं क्योंकि व्याकुलता से दूरियाँ मिटती हैं।

मनुष्य मोह माया के चक्कर में इस प्रकार कसा हुआ है कि उसने अपने वास्तविक एवं सच्चे जीवन उद्देश्य को भुला दिया है। सांसारिक पदार्थों में मनुष्य की प्रीति ज्यादा है और जिसने संसार को बनाया उससे प्रीति नहीं यह कैसी अज्ञानता है। जिस संसार से हम प्रीति किये बैठे हैं वह सत्य नहीं और जो सत्य नहीं उसमें सुख नहीं हो सकता है।

मनुष्य जीवन का उद्देश्य परमात्मा को जानना। आत्मा परमात्मा का अंश है जब तक वह परमात्मा के पास नहीं चली जाती तब तक जीवन में भटकाव एवं अनन्त दुःख का नाश नहीं हो सकता।

गुरु नानक देव जी कहते हैं कि तू परमात्मा की भक्ति कमाने आया था परंतु तू तो यहाँ सांसारिक माया में उलझ गया जीवन बहुत थोड़ा है क्या तुझे पता नहीं? संसार सागर से पार उतरने का सहारा परमात्मा में मन लगाना सद्गुरु देव की आज्ञा का पालन नितांत आवश्यक है। गुरु मंत्र का जाप+ध्यान फिर क्या वह जीवन की डोर को पकड़ कर भवसागर से चुटकी में पार करा देंगे।

जो मनुष्य अपने जीवन को महत्वपूर्ण बनाना चाहते हैं मर कर भी परलोक सुधारना चाहते हैं उसे जीवन में धर्म को स्थान देना होगा अपने जीवन को मन, वचन, कर्म से धर्ममय बनाना होगा।

यदि सच्चे जीवन का आनन्द लेना है तो झूठे जीवन से पार जाना होगा।

■ ■ ■

गीत

भूपेन्द्र 'अंकुश', जयसिंहपुर

बार-बार सद्गुरु सों बोले, 'एक मौज ले दो ना।
एक हाथ में अमृत मेरे एक हाथ में सोना। सोना-सोना-सोना।।
सोने-जागने का सुख ऐसा जैसे देवी दाक्षर।
इसीलिए तो छूट न पावे चौरासी का चक्कर।
चौरासी का चक्कर, रह रह मारे टक्कर।।
तन के संग मौत का होता पुनि-पुनि शादी गौना।। सोना-सोना-सोना।। 1।।
सोना पाकर नर बौराये बात करे सतराके।
छाती अकड़े, गरदन अकड़े चाल चले इतराके।।
चाल चले इतराके; धन को रक्खे छिपाके।।
कभी इधर का कभी उधर का खोदत डोले कौना।। सोना-सोना-सोना।। 2।।
अमृत पीले जितना चाहे तनिक अधिक या आधा।
सिद्ध बनेगा अमर रहेगा होय न फिर अपराधा।।
होय न फिर अपराधा; दूर होय सब व्याधा।।
असर करे ना उस पर कोई जादू, मन्तर, टोना।। सोना-सोना-सोना।। 3।।
सागर पीकर प्यास दिखावे ज्ञानी आतम ज्ञानी।
अज्ञानी गुरु की ना माने रोज करे मनमानी।।
रोज करे मनमानी; यही मूर्ख अभिमानी।।
अहंकार है जब तक जिसमें मिलती मुक्ति सो ना।। सोना-सोना-सोना।। 4।।

नारी को योग की आवश्यकता

डॉ. श्रीमती सरिता भारद्वाज,
एम.ए. (हिन्दी, संस्कृत), बी.एड., आचार्य (सांख्य योग) डी.एन.वाई

योगेश्वर श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता के छठे अध्याय में श्लोक संख्या 40 से 45 तक अर्जुन के मन में उठ रहे संशयों का समाधान करते हुए उत्तर दिया है कि बिना योगयुक्त कर्म करने से ज्ञानी, भक्त या साधक के चित्त में कर्त्ता और भोक्तापने का भाव उन्हें सुख-दुःख और जन्म-मरण के कर्मबन्धन में डालता है। अतः इन्द्रिय, मन, बुद्धि और चित्त की शुद्धि तथा समाधान किए बिना परम कल्याण का कोई अन्य मार्ग नहीं है। योगाभ्यास का परिणाम हर हालत में कल्याणकारी ही होता है। यदि देहात्मबोध, विषयासक्ति, आलस्य या प्राक्तन पाप कर्मों के दुष्परिणामों के फलस्वरूप किसी के मार्ग में महर्षि पतंजलि के योगसूत्र में प्रोक्त नौ विघ्नों में दो प्रबलतर विघ्न आ जायें जिन्हें अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थितत्व कहा जाता है और समाधि-सिद्धि के पूर्व ही शरीर छूट जाता है, तो उन्हें पुनर्जन्म लेकर योग की अधूरी रह गई पढ़ाई पढ़ने का पुनः अवसर मिलता है। ऐसे अवस्थापन्न साधकों को 'योगभ्रष्ट' कहा जाता है। इस कोटि के साधकों में प्रारम्भिक अवस्था के और योगारूढ़ किंतु अपनी मंजिल पर न पहुँच सकने वाले साधक दोनों ही होते हैं। ऐसे योगभ्रष्ट साधकों को योगशक्ति के प्रभाव से पुनः मानव शरीर मिला करता है। उन साधकों का जन्म साधना के स्तर के अनुरूप दो प्रकार से होता है। योग साधना में किए गए तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान क्रिया योग के प्रभाव से पहले उन्हें स्वर्गादि दिव्य लोकों का ऐश्वर्ययोग उपलब्ध होता है। पश्चात् पुण्यों के क्षीण होने पर वे योग साधना के तारतम्य के अनुसार तपोधन, ज्ञानधन तथा विवेक वैराग्य युक्त धन से सम्पन्न पवित्र उच्च कुलों में योग भ्रष्टों का जन्म होता है। दूसरे प्रकार का दुर्लभतर जन्म ज्ञान और भक्तियुक्त परमविरक्त पवित्र योगियों के कुल में उच्च भूमिकाओं में आरूढ़ योग साधना से पतित साधकों का हुआ करता है। यहाँ यह प्रश्न स्वाभाविक है कि ऐसे कुल इस पापभलायन पूर्ण कलिकाल में कहाँ मिलेंगे? जब तक उन्हें जन्म देने वाले संयमी पवित्र माता-पिता नहीं मिलते, ऐसी आत्माएँ भूत-प्रेत, ब्रह्मराक्षस आदि के समूहों में मिलकर इधर-उधर भटकती रहती हैं। कई बार वे अपने कल्याण के लिए किसी प्रमादी साधक के ध्यान में जाकर उसके शरीर में पूर्ववासना के अनुसार प्रविष्ट हो जाती हैं। जब तक उनको मानव शरीर धारण करने का अवसर नहीं प्राप्त होता तब तक उनका भटकाव बना रहता है। हमारे घर पर तथा योग शिविरों में हमें ऐसी परशरीराविष्ट आत्माओं का अनुभव हुआ है जो अच्छे माँ-बाप को चुनने के लिए प्रार्थना करती हैं और मार्गदर्शन चाहा करती हैं। उन शरीरी अज्ञान अवस्था में वे स्वयं प्रकाशपथ और आत्मज्योति आच्छन्न होने से अपना मार्ग खोजने के लिए किसी आत्मवेत्ता महापुरुषों का

सहारा चाहा करती है। अपनी अधूरी रह गई साधना को लक्ष्योन्मुख बनाने के लिए मनुष्य जन्म अवश्य चाहिए।

जन्मदात्री माँ को ही ईश्वर ने ऐसी शक्ति दी है कि वह अपने तप, तेज, से चाहे जिस लोक की आत्मा को आकर्षित कर अपनी संतान के रूप में बुला सकती है। शास्त्रकारों ने इसलिए कहा है कि 'प्रजार्थं स्त्रियः सृष्टाः' अर्थात् स्वस्थ, सुयोग्य और तेजस्वी सन्तान को जन्म देने का दायित्व ब्रह्माजी ने नारी जाति को सौंपा है। किंतु प्रत्येक स्त्री इस प्रकार के दायित्व को यथोचित नीति से कहाँ निभा पाती है? जिनका शरीर हर समय रोगी बना रहता है अथवा जो अत्यधिक स्वार्थ परायण हैं, अपने उदर पोषण और साज–सज्जा को ही परम पुरुषार्थ मानती हैं, ऐसी नारियों के उदर से जन्म लेने वाले प्राणी रुग्ण, अल्पायु तथा पुरुषार्थहीन शिश्नोदर पोषण परायण होंगे। वे क्या अपने मनुष्य जीवन का चरम लाभ प्राप्त कर सकेंगे?

हमारे देश में सदियों की गुलामी के कारण समाज में अज्ञान, पाखण्ड और रीति रिवाजों के नाम पर स्त्रियों को अपने आत्म स्वरूप और योग सामर्थ्य को जगाने का अवसर नहीं मिल पाया। भ्रूण हत्या, दहेज, तलाक और स्त्री को उपभोक्ता वस्तु बनाकर हमने अपने हाथों से पैरों पर कुल्हाड़ी मारी है। उनकी शोचनीय दशा को मनीषी योगाचार्यों ने भी अनुभव किया है–

प्रायेण वनिता लोके ह्री भीतिसंयुताः।
व्यर्थवाद चातुर्य मोहचंचलमानसाः।।
परोक्तिभिः स्वधर्मं च त्यक्तुं निश्चितवृत्तयः।
अतएव क्रियायोगो तासु लुप्त इतीर्यते।।

अर्थात् इस संसार में प्रायः स्त्रियाँ अत्यधिक शर्म और संकोच के कारण आगे बढ़कर आत्मकल्याण के मार्ग से पीछे हट जाती हैं। उन्हें डर सताता है कि यदि वे योग ध्यान करेंगी तो लोग क्या कहेंगे? व्यर्थ के वाद–विवाद और बक–बक करना अधिकांश नारियों को बहुत रास आता है। दुनियादारी में अपने को चतुर बनाने में वे मोहासक्त होकर शोकाकुल चित्त होकर चंचल मानस वाली बन जाती हैं जिसमें उनमें संकल्पबल कमजोर हो जाता है। दूसरों के बहकावे पर थोड़े से लोभ में वे स्वधर्म छोड़कर कुछ भी करने को तैयार हो जाती हैं। गंडा, ताबीज और पोंगा पंथी वाले लोग उन्हें आसानी से अपना शिकार बना लेते हैं। ऐसी स्थिति में उनमें योगाभ्यास की निष्ठा कैसे स्थिर रह सकती है? जब तक उनमें शुद्ध, पवित्र, सात्विक आहार सेवन की प्रवृत्ति, पराभक्ति और गुरुभक्ति की ललक तथा सीता, सावित्री, गार्गी, अनसूया, यशोदा आदि जैसी बनने की सदिच्छा बलवती नहीं होगी, वे पवित्र आत्माओं को जन्म देकर अपनी कोख को धन्य नहीं कर सकेंगी। यदि महिलायें इस सत्य को समझ लें कि

उनका दायित्व पुरुष से बड़ा है इसलिए उन्हें शास्त्रों में पूज्या और परम सम्माननीया माना है, तो वे पश्चिम संस्कृति का अन्धानुकरण छोड़कर भारत की योगमूलक दैवी संस्कृति को पुनः प्रतिष्ठापित कर इस देश को विश्वगुरु के पद पर पुनः आरूढ़ कर सकती हैं। बीज कितना ही उत्तम हो यदि उसको पोषित और पल्लवित करने वाली भूमि पथरीली, ऊसर, बंजर या खरपतवार, कीड़े–मकोड़े से व्याप्त है, तो बीज की उत्तमता अकेले क्या कमाल कर सकेगी? पिता तो बीजप्रद मात्र है, संस्कार तो माँ ही देती है। अच्छे संस्कार देकर माँ अपनी संतान को वीर शिवाजी, विवेकानन्द, दयानन्द, झाँसी की रानी, पद्मिनी जैसी आदर्श बना सकती हैं। इसलिए योगाचार्यों ने स्त्रियों को योगाभ्यास के लिए पुरुषों से भी अधिक उपयुक्त और प्रमुख अधिकारी माना है–

अधिकारो विशेषेण स्त्रीणाम् पुंभ्यो निगद्यते।
सन्तान तरु विस्तारे, स्त्री शरीरं हि कारणम्।।
तदेव क्षेत्रमित्याहुः पुंबीज परिपालनम्।।
क्रिमिकीटादिनोपेते क्षेत्रे बीजं निरर्थकम्।
तथा तद्वत् रुजाक्रान्तं स्त्रीशरीरं निरर्थकम्।
तस्मात् लोके स्त्रियः सर्वाः विशेषेणाधिकारिणः।।

अर्थात् पुरुषवर्ग की अपेक्षा योग साधना की अधिकारिणी स्त्रियाँ सर्वाधिक है। इसका कारण यह है कि स्त्रियों के शरीर मन और बुद्धि के तन्दुरुस्त रहने पर ही स्वस्थ, सुयोग्य और आत्मवान सन्तान की परम्परा का विस्तार सम्भव है। सन्तान परम्परा के पुरुष से प्राप्त बीज को उर्वर और पूर्ण विकसित करने में उनका शरीर, मन और हृदय के भाव क्षेत्र (खेत) का कार्य करते हैं। यदि खेत में दीमक, पतंगे, चूहे और विषाणु हों तो उत्तम बीज भी निरर्थक हो जाया करता है। यदि स्त्री शरीर से रोगी रहे तो वह गर्भधारण करने और स्वस्थ संतान को जन्म देने में कैसे समर्थ हो सकती है? जन्म देने भर से ही स्त्री का कर्त्तव्य पूरा नहीं हो जाता। मानव शरीर की नौ अवस्थायें मानी जाती हैं। जैसे– गर्भाधान के समय रज वीर्य कालीन बुद्बुद् के रूप में निषेचित शरीर, अवयव निर्माण अवस्था वाला शरीर (भ्रूण), जन्मकालीन असमर्थ, कोमल मायाच्छन्न, पराश्रित शरीर, शैशवकालीन भाव शरीर, बाल्यावस्था का क्रिया–प्रधान शरीर, कौमार्यावस्था का ज्ञानमय शरीर, ज्ञान, क्रिया और इच्छा प्रधान युवा शरीर, बल–विवेक युक्त अधेड़ उम्र का शरीर, इन्द्रियों की विकलता लिए ढलती हुई सामर्थ्य वाला वृद्धावस्था का जीर्ण–शीर्ण शरीर तथा मृतावस्था का निर्जीव शरीर और मृत्यु की उत्तरावस्था का पुनर्जन्म से पूर्व का अतिवाहिक शरीर। इन सभी शरीरों के परिपालन और पोषण के लिए स्त्री को चुस्त, दुरुस्त होना अति आवश्यक है। उसके शरीर को योग के आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध, मंत्र, जप और ध्यान, समाधि से स्वस्थ रखा जा सकता है। शरीर में छः कोश होते

हैं जैसे श्वास कोश, अन्न कोश, मूत्र कोश, मलकोश, रजोकोश और वीर्यकोश। इन कोशों के नीरोग रहने से ही शरीर पूर्णतया सक्रिय रहता है। इसके अतिरिक्त स्त्री ही गृह की समस्त प्रवृत्तियों का केन्द्र होती है। वह अन्नपूर्णा के रूप में घर के सभी सदस्यों से लेकर अतिथि, भिखारी, दीनदुःखी, धर्मी–कर्मी सभी की उदरपूर्ति करती है। सरस्वती के रूप में ज्ञानदात्री है। समय–समय पर दान, उपहार और धनदान देकर लक्ष्मीरूप में वह पोषण करती है। कुलमर्यादा, गृहस्थाश्रम की मर्यादा का पालन स्त्री के सहयोग के बिना असम्भव है। वही उदारमना होकर पुत्र पौत्र, कुटुम्बी, भिक्षुक, सेवक, नाते–रिश्तेदारों का यथायोग्य सत्कार सम्मान तथा लालन–पालन करने वाली है। इतने बड़े दायित्वों का निर्वहन करने वाली अपने आत्यन्तिक कल्याण के उपायों पर ध्यान न दे, तो इससे बड़ी विडम्बना क्या होगी।

गर्भावस्था में योगाभ्यास की आवश्यकता

वैसे तो स्वास्थ्य रक्षा तथा शक्ति के संवर्धन के लिए प्रत्येक अवस्था में योगाभ्यास करना आवश्यक है। श्रीमद्भगवद्गीता में योगेश्वर श्रीकृष्ण ने सूत्र रूप में योग के सार्वभौमिक और सार्वकालिक महत्व को लक्षित करते हुए कहा है– 'योगो भवति दुःखहा' अर्थात् योग आध्यात्मिक, आधिदैविक और आदि भौतिक सभी प्रकार के दुःखों का समूलोन्मूलन करने वाला अमोघ अस्त्र है। अतः गर्भावस्था में माँ और शिशु को सम्भावित कष्टों से दूर रखने के लिए गर्भरक्षा की दृष्टि से योग की कुछ क्रियाएं करनी ही चाहिए। ऐसा करने से माता और बच्चे का स्वास्थ्य उत्तम रहेगा जिससे उनकी आयु दीर्घ होगी। गर्भाधान के पश्चात् तथा प्रसवकाल आसन्न होने पर नारियों को अनेक प्रकार के कष्ट होते है, जैसे खून की कमी, जी मचलाना, अंगों में सूजन, भूख न लगना, आलस्य रहना, कमजोरी, चक्कर आना, आँखों के आगे अंधेरा छा जाना, उदरस्थ शिशु की कोई क्रिया न होना या उसके शरीर का उलट जाना आदि तथा प्रसव का कार्य डाक्टर अपनी कमाई के लोभ से शल्य क्रिया (सीजेरियन) करने की जल्दबाजी करते हैं जिससे सद्योजात शिशु पीलियाग्रस्त हो जाते हैं और सहजता में व्यवधान पड़ने से मृत्युभय उनके अन्तर्मन में गहराई से घर कर जाता है जिससे जीवन पर्यन्त वे कायर, दब्बू, भयभीत तथा हतोत्साहित बने रहते हैं। उनके व्यक्तित्व की इस प्रकार की विसंगति का कारण प्रजनन के क्षणों में विद्यमान रहता है। हमारे देश में सिद्धों तथा योग के मनीषियों ने हृष्ट–पुष्ट और शक्तिपुंज सन्तान की प्राप्ति के लिए यौगिक क्रियाओं का विधान किया है। जिससे सुख पूर्वक शीघ्र प्रसव हो जाए तथा जच्चा–बच्चा दोनों का स्वास्थ्य उत्तम बना रहे। यहाँ उनमें से कुछ आसनों, मुद्राओं तथा प्राणायामों का उल्लेख किया जा रहा है। जिनके करने से संतान के उत्तम स्वास्थ्य के साथ–साथ योगयुक्त जीवन के निर्माण की प्रक्रिया भी गर्भावस्था से ही प्रारम्भ हो सकेगी।

गर्भपात की आशंका वाली नारियों को अत्यधिक आगे की ओर झुकने वाले तथा दायें–बायें मुड़ने वाले आसन नहीं करने चाहिए। दण्डासन, पद्मासन, भरद्वाज आसन,

वज्रासन, वीरासन आदि आसनों को योग्य योग शिक्षक की देखरेख में दीर्घ रेचक और पूरक प्राण क्रिया के साथ करना चाहिए। जो नारियाँ गर्भधारण से पूर्व सर्वांगासन और शीर्षासन का अभ्यास करती आई हैं वे गर्भकाल में पाँच माह तक इन आसनों का अभ्यास कर सकती हैं। उसके बाद विपरीतकरणी तथा ऊर्ध्व पाद अवस्था के आसनों को न करें।

ईश्वर ने प्रजनन की शक्ति नारी में ही दी है। इसी शक्ति के कारण उसे जननी कहा जाता है किंतु प्रजनन के समय नारी का एक पैर मृत्यु के मुख में और दूसरा इधर रहता है। थोड़ी सी आहार–विहार की चूक माता और शिशु के जीवन को संकटापन्न बना देती है। जैसे पुष्पागम के बाद झंझावात और उपल वृष्टि से वृक्ष की रक्षा हो सके तभी पुष्प की परिणति फल प्राप्ति में होती है। उसी प्रकार असमय में गर्भपात से शिशु की रक्षा के उपाय भी अत्यावश्यक हैं। जैसे गर्भावस्था में तेजी से भाग–दौड़ करना, नाच–कूद करना, बहुत चिल्ला–चिल्ला कर बोलना, डरावने दृश्य देखना, सन्ध्याकाल में घर के बाहर, चौराहे पर या एकान्त में भ्रमण करना, मलिन वस्त्र धारण करना, शोकाकुल रहना आदि से गर्भपात अथवा शिशु के अंगों में विकृति की संभावना रहती है। अतः सद्गृहिणी को शुद्ध, सात्विक आहार तथा योग ध्यान द्वारा गर्भस्थ शिशु की रक्षा करते रहना चाहिए। कभी–कभी चिन्ता, भय या अन्य किसी कारण से गर्भिणी नारियों को नींद नहीं आती। उनके लिए योगाचार्यों ने पद्मासन में बैठकर उज्जायी प्राणायाम उपयोगी कहा है। यह प्राणायाम कण्ठ से श्वास ऊपर को खींचकर भ्रूमध्य में मंत्र के साथ रोक कर फिर नासिका के वाम भाग से बाहर श्वास निकालने से सम्पन्न होता है। पाँचवें माह के बाद कपालभाति और भस्त्रिका छोड़कर बिना मूलबन्ध और उड्डियान बन्ध के जालन्धर बन्ध के साथ किया जाना चाहिए। जालन्धर बन्ध कण्ठ कूप में ठोड़ी लगाकर श्वांस रोक कर ठहरने की प्राणायाम से संबंधित क्रिया है। यह गर्भावस्था में बहुत हितकर है। इसके अभ्यास से अपान वायु पर विजय प्राप्त होती है। उज्जायी प्राणायाम कुम्भक पूर्वक जालन्धर बन्ध के साथ करते रहने से दोनों प्रकार की अपान वायु नियंत्रण में बनी रहती है। योगाचार्यों ने अपान वायु दो प्रकार की मानी है प्राजापत्य और सूतिका वायु। प्राजापत्य वायु से गर्भ के असमय पात की संभावना नहीं रहती। सूतिका वायु से सुखपूर्वक बिना आपरेशन के प्रसव संभव होता है। जालन्धर बन्ध के अभ्यास से पेट में गैस बनने की समस्या नहीं होती।

(शेष अगले अंक में)

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहोनातिमानिता।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत।।

—श्रीमद्भगवद् गीता

तेज, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, द्रोहहीनता और अपने मान–सम्मान के अभिमान का अभाव–ये सब तो हे अर्जुन! दैवी सम्पदा को लेकर उत्पन्न हुए पुरुष के लक्षण हैं।

हम इस संसार में खाली हाथ आते हैं और खाली हाथ ही जाते हैं, यह सभी जानते हैं, पर यह भौतिक स्थिति है। जन्म और मृत्यु के बीच की अवधि में हमारे हाथों में भौतिक पदार्थ आते रहते हैं, इसलिए खाली हाथ वाली हमारी धारणा सही मालूम होती है पर असल बात कुछ और ही है। वास्तव में न हम खाली हाथ आते हैं और न खाली हाथ जाते हैं। हमारे स्थूल शरीर वाले हाथ ही खाली होते हैं बाकी सूक्ष्म शरीर के सूक्ष्म हाथ तो हमारे द्वारा पूर्व जन्मों में अभुक्त कर्मों के फल से भरे हुए रहते हैं। जब इस जन्म में शरीर छोड़ते हैं तब भी हमारे सूक्ष्म शरीर के सूक्ष्म हाथ खाली नहीं होते, पिछले कर्मों में शेष बचे कर्म और इस जन्म में किए गये शुभाशुभ कर्म हमारे हाथों में होते हैं। जिनके हाथों में अच्छे कर्म होते हैं वे दैवी सम्पदा के स्वामी होते हैं।

SIDDHYOG Postal Regd. No. Ag/19/2009-11

JUNE 2010

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

(मासिक पत्रिका का प्रतिमाह)
पैकेट का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धयोग योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंवई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

BOOK POST

PRINTED MATTER

श्री/श्रीमती _____

_____

_____

_____

□□□□□□

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना -

निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. बैक साइडों का मोल (लागत) (स्थान चयन) का विज्ञापन
2. लैटर बॉक्सों पर स्थान का प्रायोजन (स्पोंसरशिप)
3. पैरा पोस्टों पर स्थान का प्रायोजन (स्पोंसरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्लास्टिक शीटिंग, आकार रु. 500.00 प्रति पैनल
4. पोस्टकार्ड फॉरमेट में होर्डिंग लागत विज्ञापन दर रु. 5.50 प्रति वर्ग सेंटिमीटर प्रति माह
5. डाकघर के अंदर या बाहर स्थानीय कोई अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के पत्रों पर स्टाम्प कॉलिंटेशन की डाई लागत विज्ञापन दर 50 100/- प्रति डाई अतिरिक्त डाई का मूल्य रु 400/-
7. मोबाइल पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के उल्टे भाग पर उत्पाद का विज्ञापन : दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मोबाइल पोस्ट कार्ड का विज्ञापन मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री स्वामीजी सच्चिदानन्द जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दामोदर शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-6 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंवई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14506.

सम्पादक : आचार्य म.(डॉ.) दामोदर शर्मा